प्रकाशक—
हिन्दू-गौरव-ग्रन्थमाला
८, मन्दिर स्ट्रीट
कलकत्ता

पुस्तक—पृष्ठ संख्या ३०० लगभग
चित्र संख्या—८
पद—वेद, उपनिषद, गीता, नीति, धम्मपद,
भजन—७००

मुद्रक—
पं० रामदुलारे तिवारी
दी नेशनल प्रिण्टर्स
१, नारायनबाबू लेन
कलकत्ता

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ॥ ऋग्वेद ॥

सम्पूर्ण जगत को आर्यधर्मी अर्थात् सत्यधर्मी बनाओ।
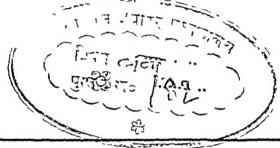
भूल-सुधार

पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
६	ब्रह्म	ब्रह्मा
८७	ध्यान	धान (अनाज)
६३	डार	धार
१६०	व्यास	प्यास

विषय सूची

निवेदन १ से १० पृष्ठ तक

प्रथम विभाग

(संस्कृत ग्रंथों के वाक्य)

वेद वाक्य-ऋग्-साम-यजुर्वेद वैदिक सुभाषित—
अथर्वेद पृष्ठ क ख से ५ तक
ईश चिन्तन ५ से ९ पृष्ठ तक
ब्रह्मस्तोत्र १० से १२ पृष्ठ
दर्शनशास्त्र के उपदेश पृष्ठ झ ञ ट तक
उपनिषद् वाक्य ठ ड ढ ण त थ द ध न य र से १५ तक
श्रीभगवद्गीता-नीति-धर्म १६, ग, घ से २४ तक

द्वितीय विभाग

१ भगवान बुद्ध की वाणी १ से १७ पृष्ठ तक

२ वर्णव्यवस्था और प्राचीन ब्राह्मण कैसे थे उनका पतन. ब्रह्मसायुज्य कैसे लाभ होता है १८-२४ पृष्ठ

तृतीय विभाग

१ संत कबीरदासजी के शब्द—पद वसंत–होली पृष्ठ प फ ब भ से ३२ पृष्ठ तक
२ गोस्वामी तुलसीदासजीके भजन ३३ से ५० पृष्ठ तक
३ संत रैदासजी के पद ५१ से ६० पृष्ठ तक
४ गुरु नानक विनय ६१ से ७१ पृष्ठ तक
५ भक्त सूरदासजीके पद नाम-ध्वनि ७२ से ८५
६ मीराबाई के पद से ८६ से १०१ तक
७ संत दादू दयालजी के भजन १०२ से १०६ तक
८ मलूकदासजी की बानी १०७ से १०९
९ सुन्दरदासजी के पद ११० से १२१ तक
१० भूषण शिवा बावनी १२२ से १२३ तक
११ गुरु गोविन्द सिंह की वाणी (भगवती स्तुति छक्के देवीसे) १२४ से १३३ पृष्ठ

१२ श्रीमुख पातसाही १० गुरुगोविन्द सिहजी (जपुजी साहब) सिक्ख सम्प्रदाय से १३४ से १४३ तक

१३ सन्त चरनदास जी के पद१४४ से १४७ तक

१४ सहजो बाई के पद १४८ से १५० तक

१५ गुजराती मराठी—भजन १५१ से १५६ तक

१६ कविवर रवीन्द्रजी के बङ्गाली-पद १५७ से १५९ तक

१७ जैन-पद-संग्रह १५९ से १६१ तक

१८ महामना पं० मदनमोहन मालवीय कृत उपदेश १६१ से १६४ तक

१९ आर्यसमाज के पद १६४ से १६८ तक

२० ध्रुपद प्रार्थना—द्रौपदी-पुकार १७५ पृष्ठ तक

२१ हिन्दू धर्माभिमान-पद (शुक्लजी) १७६ से १८३ तक

२२ मारवाड़ी भजन १८४ से १८९ तक

२३ छप्पय भर्तृहरिशतक १९०-१९१ तक

३४ ध्रुपद—निर्विकार प्रभु० १९२ तक

———

निवेदन

आजकल देखा जाता है कि बहुत से आर्य-धर्मियों को अपने धर्म की बातो का कुछ भी ज्ञान नहीं है इसका कारण धार्मिक शिक्षा और उपदेश का अभाव है। धार्मिक ज्ञानके अभाव के कारण ही हिन्दू जाति छिन्न भिन्न होती चली जा रही है सभी हिन्दू चाहे बौद्ध हों, सिक्ख हों, जैन हों, आर्यसमाजी हों सनातनी हों एक जाति के मनुष्य हैं। "महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा" से लेकर हरिश्चन्द्र और रामकृष्ण और गौतम बुद्ध ऋषभाचार्य श्रीशङ्कराचार्य श्रीरामानुजाचार्य श्रीनानकदेव विक्रमादित्य सम्राट अशोक व चन्द्रगुप्त और शालिवाहन शिवाजी और गुरुगोविन्द आदि सभी हिन्दू थे और हिन्दू उनको

अपना पूर्वज मानते है। इस प्रकारकी सव एक जाति है और इसकी रक्षा के लिये सब एक हो सकते है।

समान धर्म

प्राचीन आर्यधर्मी हिन्दू-जातिका समान धर्म है और वही हिन्दूधर्म है। हिन्दुओंमें इस समय कई साम्प्र-दायिक धर्म है, पर सबके सिद्धान्त एक है। जिन्हे हम आज साम्प्रदायिक समझते है वास्तव में हिन्दूधर्म से स्वतन्त्र वे कोई भिन्न धर्म नहीं है। जिन महापुरुषो के नाम पर ये साम्प्रदायिक धर्म चले है उन्होंने स्वयं कोई अलग अपना धर्म चलाना नहीं चाहा था। हिन्दू-धर्म के जो सर्वमान्य सिद्धान्त है और उनके अनुकूल जो आचरण है वह जब जब दूपित हुए है तब तब महात्माओंने एक वा अधिक सिद्धान्तों पर अधिक जोर दिया है। इसका प्रमाण यही है कि हिन्दूधर्म के आज जितने भी सम्प्रदाय है उनके सिद्धान्तों में विरोध नहीं है। हिन्दुओंमें तीन चौथाई

सनातनियों की संख्या है और सबका धर्म हर प्रकार से एक है. इसमें तो कोई सन्देह नहीं कर सकता। आर्यसमाजियों का धर्म भी वही है जो सनातनियों का. इसे स्वयम् आर्य्यसमाजी भी मानते हैं। दोनों का धर्म वैदिक धर्म है। अब रह गये जैनी और बौद्ध। साधारणतः यह धारणा है कि ये दोनों धर्म अवैदिक हैं. अतएव ये हिन्दू-धर्म से भिन्न हैं। पर वास्तव में यह भूल है। इन धर्मों के उन्नतिकाल की अवस्था जानने और उनके धार्मिक ग्रन्थो के पढ़ने से ही यह मालूम हो जायगा कि उनके धार्मिक सिद्धान्त भी वे ही हैं जो वैदिक हिन्दुओं के। वेद ने "अहिंसा परमोधर्मः" माना है। इनका भी अहिंसा परम धर्म है। फिर इनका धर्म वेदविरुद्ध कैसे कहा जा सकता है? सच बात तो यह है कि इन्होंने वेदों की निन्दा नहीं की थी। वेद के नाम में जो अधर्म हो रहा था उसकी निन्दा की थी। बुद्ध को सभी हिन्दू अवतार

मानते है। परम कृष्णभक्त जयदेव ने भक्तिपूर्ण मधुर राग में गाया है—

निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम्।
सदय—हृदय—दर्शित पशुघातम्॥
केशव धृत बुद्ध शरीर, जय जगदीश हरे॥

सभी हिन्दू बुद्ध की भक्ति इसी प्रकार करते हैं। बुद्धने वेदाज्ञा के बहाने होने वाली पशुहत्या और अन्य धार्मिक अन्धेरो की निन्दा की थी, वेद की नहीं, वेदधर्म की नहीं। बौद्ध-धर्म हिन्दूधर्म से भिन्न नहीं है। इसके बाद सिक्ख-धर्म है। जो आज हिन्दधर्म से अलग समझा जाता है, पर इसकी उत्पत्ति हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिये ही हुई थी। खालसा के स्थापक गुरु गोविन्दसिंह की,

सकल जगत में खालसा पंथ गाजै।
जगै धर्म हिन्दू सकल दुंद भाजै॥

वाणी सिक्ख-सम्प्रदायका उद्देश्य बतलाने के लिये

पर्य्याप्त है। इस प्रकार यह प्रत्यक्ष है कि किसी धर्म्माचार्य की इच्छा अलग स्थायी सम्प्रदाय स्थापित करने की नहीं थी, सभी हिंदू-धर्म की रक्षा चाहते थे। पर अब ये सम्प्रदाय स्थायी हो गये है। उपासना के मार्ग में इनमें कुछ विभिन्नता है। पर इन सम्प्रदायोंकी एकता आज भी ज्यों-की-त्यों है। सभी सम्प्रदाय प्रणववाचक ॐ का जाप करते है। सभी "आचारप्रभवो धर्मः' का सिद्धान्त मानते हैं। सभी आर्य-धर्मी हिन्दू-सम्प्रदायोंका यह विश्वास है कि उपासनाका यही एक मार्ग नहीं है जिसे हम करते हैं, "आकाशात् पतितंतोयं यथा गच्छति सागरं। सर्व्वदेव नमस्कारं केशवं प्रति गच्छति ॥' के सिद्धान्तोंको सभी मानते है, सब का पुनर्जन्म के सिद्धान्तमें विश्वास है, सभी कर्मफलके कायल है। मोक्ष या निर्वाण का सिद्धान्त आर्यधर्मके भीतर ही है। इसके सिवा अन्य कितने समान सिद्धान्त सब सम्प्रदायों के है।

ये हिन्दू-धर्म के सिद्धान्त है। ये किसी अन्य धर्म के सिद्धान्त नहीं है। यह हिन्दू सम्प्रदायोकी और समान आर्य-धर्म्म की विशेषता है। इसकी रक्षा करना सभी सम्प्रदायों का कर्त्तव्य है। हिन्दू-जातिका कर्त्तव्य है। इसलिये इस धर्म की रक्षा के लिये हिन्दू सङ्गठित हो सकते है। तीसरा आधार समान जन्म-भूमि है। सभी हिन्दू-सम्प्रदायोंकी जन्मभूमि भारत है। यही इनका वासस्थान है, यहीं इनके पूर्वज और धर्म्म-संस्थापक उत्पन्न हुए है। इसलिये आसेतु-हिमाचल और सिन्धु नदीसे बंगसागर तक यह समग्र हिन्दुस्थान देश समग्र हिन्दू-जातिका अखण्ड और पवित्रतम तीर्थ स्थान है। यह जन्मभूमि प्रत्येक हिन्दूके लिये "स्वर्गादपिगरीयसी" है। जिसके विषय में "धन्यास्तुते भारतभूमिभागो" की धारणा है, वह भारतभूमि प्रत्येक हिन्दूकी जन्मभूमि और धर्मभूमि है उसकी रक्षाके लिये सब हिन्दू एक हो

सकते हैं। इसके सिवा समान संस्कृति और समान इतिहास भी संगठनके आधार है। हिन्दू जातिकी संस्कृति प्रत्येक हिन्दू-सम्प्रदायकी संस्कृति है और भारतीय इतिहास सबका इतिहास है। उस संस्कृति और इतिहासका गौरव रखना हिन्दूमात्रका कर्त्तव्य है।

हिन्दूधर्ममें स्वार्थी और मूर्खोंके कारण परस्पर साम्प्रदायिक द्वेषभाव हो जानेसे जैसे शिव, विष्णुकी निन्दाके प्रकरण आ घुसे हैं इसी तरह बौद्ध, जैन और ब्राह्मण-धर्मों में परस्पर निन्दा की बातें आ गयी हैं। उचित दृष्टिसे देखते हुए, ये बातें हमारे धर्मोद्यानके सुन्दर फल पुष्प नहीं, किन्तु उस उद्यानके बिगाड़नेवाले कांटे हैं। इसलिये इन बातोंकी सर्वथा उपेक्षा करनी चाहिये, क्योंकि अज्ञानसे धर्मके मर्मको न समझनेके कारण ही साम्प्रदायिक द्वेष फैलकर हिन्दू-जाति इस समय सब प्रकारसे क्षीण होरही है।

यदि हम अपने धर्म—आर्यधर्म—के सच्चे तत्वोंको समझने लग जायं तो फिरसे प्राचीन समयकी भांति यह हिन्दू-जाति संसारमें शिरोमणि बन सकती है। किन्तु ऐसी योग्यता प्राप्त करनेके लिये उन बुरी रूढ़ियोंकी दासता, जिनका धर्म और न्यायसे कोई सम्बन्ध नहीं है, त्यागकर हिन्दू मात्रमें सब प्रकारसे ज्ञान-विज्ञानकी वृद्धि करते हुए और परस्परका प्रेम बढ़ाते हुए हिन्दू जातीय संगठन बनानेकी आवश्यकता है। और मनुष्यमात्रमें भी इस पवित्र हिन्दूधर्मका ज्ञान फैलानेकी आवश्यकता है। प्रत्येक हिन्दू-सन्तानका धर्म-प्रचार करनेका यह पवित्र कर्त्तव्य है, क्योंकि इस ज्ञानरूपी अमृतका दान करनेपर मनुष्य मात्रकी भलाई हो सकती है, किन्तु यह काम तभी हो सकता है जब हम हिन्दू लोग अपने आपको इसके योग्य बनालें। देशमें जितना शीघ्र विद्या और धर्मका प्रचार होगा उतना ही शीघ्र हम लोग योग्य बन सकेंगे।

अन्य जितने अनार्य ईसाई और मुसलमान आदि मत है, वे दो सहस्त्र वर्षो तक भीतरके ही वने हुए है. कुरान, वाईवलमें ऐसी अनेक वाते वतलाई गई है जो तर्क और बुद्धिसे सिद्ध ही नहीं हो सकतीं. जैसे उन मतोंमें पुनर्जन्मको नहीं मानना, जब एक वार मनुष्य मर जाता है तो वह प्रलयतक कब्रमें पड़ा रहता है. एक दिन प्रलय होने पर सव मुर्दे एक वार ही उठकर खुदा के सामने अपने शुभाशुभ कर्मोका फल भोगनेके लिये खडे होगे, इत्यादि ऐसी अनेक वाते है।

तथा ईसाई मुसलमानी मतों में मुक्ति का मार्ग भी नहीं है उनको योग आदि विद्या का भी पता नहीं उनके पास अध्यात्म विद्याके उच्चकोटि की फिलासिफ़ी सांख्य वेदान्त जैसे परिपूर्ण ज्ञान के ग्रन्थ भी नहीं इस कारण पुनर्जन्म कर्मवाद और मोक्ष तत्व ज्ञान के सिद्धान्तों को वे नहीं समझते।

वेद, उपनिषद, गीता, धम्मपद, संत वाणी आदि ग्रन्थों के पढ़ने से यही पता चलता है कि हमारे महापुरुषों ने अध्यात्म सत्य को किसी पूर्णता तक पहुंचा दिया है।

हिन्दू-गौरव-गान के इस संस्करण में आर्यधर्म के प्राचीन काल से लेकर आधुनिक महात्माओं और सज्जनों के सुखकारी पदों का संग्रह है इसमें भक्ति, ज्ञान वैराग्य के अतिरिक्त सामाजिक और बीरता सम्बन्धी भजन भी दिये गये हैं क्योंकि यह स्मरण रखना चाहिये कि राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक उन्नति के बिना धर्म की रक्षा नहीं हो सकती। आशा है यह पुस्तक धर्म प्रेमी सज्जनों और संगीत प्रेमियों तथा लोक समुदाय के लिये लाभकारी होगी।

संग्रहकर्ता,

प्रथम विभाग

संस्कृत ग्रन्थो के वाक्य

❀ वेद–वाक्य ❀

इयं विसृष्टिर्यत आ वभूव यदि वा दधे यदि वा न। यो अस्याध्यक्षः परमेव्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद। —ऋग्वेद

हे अङ्ग, जिससे यह नाना प्रकार की सृष्टि प्रकाशित हुई है: और जो इसका धारण और प्रलय करता है, जो इसका अध्यक्ष है, और जिस व्यापक में यह सब जगत् उत्पत्ति, स्थिति और लय को प्राप्त होता है, वही परमात्मा है, उसको तुम जानो, और दूसरे किसी को (जड़ प्रकृति आदि को) सृष्टिकर्त्ता मत मानो। उपनिषद् भी यही कहते है:—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवंति । यत्प्रयंत्यभिसंविशंति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म । —तैत्तिरीयोपनिषद्

जिस परमात्मा से यह सम्पूर्ण सृष्टि उत्पन्न हुई है, जिसमें यह जीवित रहती है ; और जिसमें फिर लय को प्राप्त हो जाती है, वही परब्रह्म परमात्मा है। उसको जानने की इच्छा करो।

कया नश्चित्र आभूव दूती सदावृधः सखा।
कया शचिष्ठया वृता ॥ सामवेद अ० १ मं० ३

परमात्माने इसमंत्रमें प्रश्नोत्तररूपसे जीवों को यह उपदेश किया है कि परमात्माकी अनुकूलता अच्छे, बुद्धियुक्त वर्तावसेही होसक्ती है अतः हमको चाहिये कि हम सदा ऐसे कामों में लगे रहे जिनसे प्रतिदिन बुद्धि की उज्वलता होती रहे। परमात्मा तो न्यायकारी है; वह मोह और अज्ञानसे सदा दूर रहने वालोंकीही सहायता करता है।

हिन्दू-गौरव-गान

जातीय सङ्गठन के लिये वेद-वाक्य

संगच्छध्वं संवदध्वं
संवो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे
संजानाना उपासते ॥
(यजुर्वेद)

अर्थ—हे मनुष्यों (संगच्छध्वम्) एक पथ पर चलो (संवदध्वम्) परस्पर भली प्रकार संभाषण

करो (संवः मनांसि) तुम्हारे मन उत्तम भावो से युक्त हों(पूर्वे) पहले के (संजानाना देवाः) उत्तम ज्ञानी लोग (यथा) जिसप्रकार (भागं) अपने कर्तव्य की (उपासते) पालना करते है या करते आये है वैसा ही तुम भी करो।

वैदिक–सुभाषित

ईशावास्यमिदंसर्वम् ।	सब जगतमें ईश्वर व्याप्त है।
तच्चक्षुर्देव हितंपुरस्ता-च्छुक्रमुच्चरत् ।	वह ज्ञानियोका हित करने वाला दिव्य शुद्ध प्रकाश पहले से ही उदय है ।
भद्रं वद पुत्रैः ।	लड़कोंके साथ उत्तम भाषण करो ।

भद्रं वद गृहेषु च ।	घरोंमें शुभ विचार बोलो।
वाचं वदत भद्रया ।	उत्तम वाणीसे बात चीत करो ।
मनोदानाय चोदयन् ।	मन दानके लिये प्रेरित करो ।
मनो यज्ञेन कल्पताम् प्राणो यज्ञेन कल्पताम् वाक् यज्ञेन कल्पताम् ।	मनको सत्कर्ममें लगाओ, प्राणको सत्कर्ममें लगाओ वाणीको सत्कर्ममें अर्पित करो ।
संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।	सङ्घ बनाओ, उत्तम भाषण करो, मनोंको सुसंस्कृत करो ।
उत्तिष्ठ अवपश्यत ।	उठो चारो ओर देखो ।

अत्रा जहीत ये असन्न शिवा ।	जो अमङ्गल हैं उन्हे छोड़ो।
आपश्च विश्वभेषजी ।	जलमें सब दवाइयाँ है।
अग्निं च विश्वशंभुवम् ।	अग्निसे सब कल्याण होता है।
आपो अमीव-चातनीः।	जल रोगोंको दूर करने वाला है।
गुप्ता वः सन्तु-मागृधः ।	सुरक्षित रहो लालच न करो।

आत्म-संरक्षण बल

ओ जो ऽस्यो जो मे दाः स्वाहा, सहोऽसि सहो मे दाः स्वाहा, बलमसि बल मे दाः	अर्थ-तू शारीरिक सामर्थ्य है मुझे शरीर सामर्थ्य दे तू सहन शक्ति से युक्त है मुझे सहन शक्ति दे,

स्वाहा, आयुरस्यायुर्मेदाः स्वाहा चक्षुरसि चक्षुर्मेंदाः स्वाहा, परिपाणंमसि परिपाणं मे दाः स्वाहा ।

(अथर्ववेद सूक्त १७)

तू बल स्वरूप है मुझे बल दे, तू जीवन शक्ति है मुझे जीवन शक्ति दे, तू श्रवण शक्ति है मुझे श्रवण शक्ति दे, तू दर्शन शक्ति है मुझे दर्शन शक्ति दे. तू परिपाण है मुझे आत्मरक्षण करनेकी शक्ति दे ।

ईश-चिन्तन

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,

त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।

त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव ।

त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः
स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः सांगपदक्रमोप-
निषदैर्गायन्ति यं सामगाः
ध्यानावस्थित तद्गतेन
मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरा-
सुरगणा देवाय तस्मै नमः

अर्थ—ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र और मरुद्गण दिव्य स्तोत्रो द्वारा जिस की स्तुति करते है, सामवेद के गानेवाले अङ्ग पद क्रम और उपनिषदों के सहित वेदो द्वारा जिसका गायन करते है, योगी जन ध्यान में स्थित तद्गत हुये मनसे जिसका दर्शन करते है देवता और असुरगण (कोई भी)

जिसके अन्त को नहीं जानते उस (परमपुरुष) देवके लिये मेरा नमस्कार है।

श्रीमद्भगवद्गीता

[अध्याय ११]

त्वमादिदेवः पुरुषःपुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परंनिधानम्।
वेत्ताऽसि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥३८॥

अर्थ—आप आदि देव और सनातन पुरुष हैं। आप इस जगत के परम आश्रय और जानने वाले तथा जानने योग्य और परमधाम है। हे अनन्त रूप! आप से यह सब जगत व्याप्त है।

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशांकः।
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ॥

नमो नमस्तेऽस्तु सहस्त्रकृत्वः ।
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥३९॥

अर्थ—आप वायु-यमराज-अग्नि-वरुण-चन्द्रमा तथा प्रजा के स्वामी ब्रह्मा और ब्रह्मा के भी पिता है आप के लिये हजारों वार नमस्कार होवे। आप के लिये फिर भी वारम्वार नमस्कार।

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोऽस्तुते सर्वत एव सर्व !
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥४०॥

अर्थ—हे अनन्त समर्थ्य वाले। आप के लिये आगेसे और पीछे से भी नमस्कार होवे। हे सर्वात्मन्! आप के लिये सब ओरसे ही नमस्कार होवे क्योंकि अनन्त पराक्रमशाली आप सब संसार मे व्याप्त किये हुये है। इससे आप ही सर्वरूप है।

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥

अर्थ—आप इस चराचर जगत के पिता और गुरु से भी बड़े गुरु एवं अति पूजनीय हैं। हे अतिशय प्रभाव वाले तीनों लोकों में आप के समान दूसरा कोई नहीं है। फिर अधिक कैसे होवे ?

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥

अर्थ—इसलिये हे प्रभो ! मैं शरीर को अच्छी प्रकार चरणों में रख, प्रणाम कर के स्तुति करने

योग्य आप को प्रसन्न होने के लिये आप की प्रार्थना करता हूँ। हे देव ! पिता जैसे पुत्रके, सखा जैसे मित्रके, पति जैसे प्रिय स्त्रीके वैसा ही आप भी मेरे अपराधको सहन करने योग्यहैं।

ब्रह्मस्तोत्र-

[ब्रह्म निर्वाण तन्त्रसे]

नमस्ते सते सर्वलोकाश्रयाय।
नमस्ते चिते विश्वरूपात्मकाय।
नमोऽद्वैततत्त्वाय मुक्तिप्रदाय।
नमो ब्रह्मणे व्यापिने निर्गुणाय॥

अर्थ—हे सत् ! सब लोकों के आश्रय ! नमस्ते। हे चित्स्वरूप आत्मा, जिससे विश्व रूप सम्बन्ध

है. नमस्ते। हे अद्वैत तत्त्व ! मुक्ति दाता !
नमस्ते। हे ब्रह्म सर्व व्यापक! निर्गुण ! नमस्ते।

त्वमेकं शरण्यं त्वमेकंवरेण्यं।
त्वमेकं जगत्कारणं विश्वरूपम्।
त्वमेकं जगत्कर्त्तृ पातृप्रहर्तृ ।
त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम्।

अर्थ--तू ही शरण में आये हुये की रक्षा करने वाला तू ही सर्वोत्तम तू ही विश्वरूप जगत का कारण है। तू ही जगत का कर्ता, रक्षक, प्रहार करने वाला तू ही परब्रह्म, निश्चय और निर्विकल्प है।

परेश प्रभो सर्वरूपाप्रकाशिन्।
अनिर्देश्य सर्वेन्द्रियागम्य सत्य।
अचिन्त्याक्षर व्यापकाव्यक्ततत्त्व।
जगद्भासकाधीश पायादपायात्॥

अर्थ—हे परम ईश ! प्रभु आप सब रूपों में लुप्त है। आपका वर्णन नहीं हो सकता। हे सत्य ! आप तक इन्द्रियोंकी पहुँच नहीं हो सकती-हे अचिन्त्य अक्षर ! सर्व व्यापक ! अव्यक्त तत्व जगत् प्रकाशक अधीश्वर ! हानि से रक्षा कर।

तदेकं स्मरामस्तदेकं जपामः।
तदेकं जगत्साक्षि रूपं नमामः।
सदेकंनिधानं निरालम्बमीशं।
भवाम्भोधिपोतंशरण्यं व्रजामः॥

अर्थ—हम उस एक का ही स्मरण करते है। उसएक ही का जप करते है। उसी एक जगत्साक्षि रूप प्रभु को प्रणाम करते हैं। उस सत्, एक, आश्रय, निराधार, ईश्वर भवसागर के जहाज रूप की शरण जाते है।

ओं नमस्ते परंब्रह्म नमस्ते परमात्मने।
निर्गुणाय नमस्तुभ्यं सद्रूपाय नमो नमः

* दर्शन शास्त्र के उपदेश *

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। योगदर्शन सू० २

चित्त की वृत्तियों के निरोध का नाम योग है।

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञ बीजम्। यो० सू० २५

ईश्वर में सम्पूर्ण ज्ञान का बीज वर्तमान है।

अविद्याऽस्मितारागद्वेषाऽभिनिवेशाः। पञ्च-क्लेशा ॥ ३ ॥ द्वितीय अध्याय।

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश यह पाँच प्रकार के क्लेशों के भेद हैं। इनमें से अविद्या ही मुख्य क्लेश है।

तस्य हेतुरविद्या ॥ योगदर्शन सू० २४

(अर्थ) आत्माके बंधनका हेतु अविद्या है ॥

समीक्षा—जितने दुःख हैं उन सबका मूलकारण महर्षि पातञ्जलि की सम्मतिमें अविद्या है अतः हम

सबको चाहिये कि अविद्याके नाश करनेके लिये पूर्ण प्रयत्न करें।

अत्यन्तदुःखनियत्या कृतकृत्यता।

(अर्थ) मनुष्य अपने को कृतकृत्य तभी समझे जब अपने पुरुषार्थ द्वारा त्रिविधि तापो से अत्यन्त निवृत्ति प्राप्त कर चुके। सांख्य अ० ६ सूत्र ५

त्रिविध ताप निम्नलिखित हैं—

आध्यात्मिक—शारीरिक और मानसिक व्याधियोंसे होनेवाले दुःख, ...

आधिभौतिक—सिंह, सर्पादिक हिंसक जीवों या चोर, डाकू और शत्रुओंसे होनेवाले दुःख

आधिदैविक—अतिवृष्टि अनावृष्टि और विद्युतादिद्वारा होनेवाले दुःख, ..

समीक्षा—उपरोक्त तीन प्रकारके दुःखों से अत्यन्त निवृत्ति तभी प्राप्ति हो सकती है, जब मनुष्य

धर्म का सेवन करे। धर्म का लक्षण कणादमुनि ने अपने वैशेषिक दर्शन में किया है यथा—

यतोऽभ्युदय निःश्रेय स सिद्धिः स धर्मः।
वैशेषिकदर्शन अध्याय १ सू० २ ॥

(अर्थ) जिस कर्मके करने से लौकिक और पारलौकिक सिद्धि प्राप्त हो वही धर्म है ॥

समीक्षा—ऐसे कर्म जिनसे हम इस लोक में विद्या ऐश्वर्य्य आरोग्यता और स्वतन्त्रता आदि सात्विक पदार्थों की प्राप्ति करते हुये मरण पीछे क्रमशः परमोत्तम गति मोक्ष को प्राप्त हों वे धर्म-शब्द से बोले जाते हैं। गौतममुनि ने अज्ञान निवृत्ति से मोक्ष का होना माना है सो भी ठीकही है, क्योंकि जब मनुष्य का मिथ्या ज्ञान दूर होगा तभी वह धर्म में प्रवृत्त होगा।

उपनिषद् वाक्य

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण-
मुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवा-
वशिष्यते ।

वह परमेश्वर पूर्ण है, अखण्ड है, यह जगत् स्वसत्ता में पूर्ण है, कुछ भी ऊना नहीं है। पूर्ण भगवान् से ही यह पूर्ण जगत् उदय होता है। पूर्ण परमेश्वर का पूर्ण स्वरूप लेकर, पूर्ण स्वरूप को अपने में धारण कर, फिर भी भगवान् सर्वत्र पूर्ण ही रह जाता है।

ईशावास्यमिदं सर्वं
यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा
मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥ १ ॥

यह दृश्यमान सब, और जो कुछ भी त्रिलोकी में जगत् है वह सब ईश्वर से आच्छादित है, ईश्वर से बसने योग्य है: उसमें ईश्वर विद्यमान है। हे उपासक तू उस त्याग से (ईश्वर से त्रिलोकी आच्छादित है, भगवान् के शासन में सारा जगत् है इस भावमय त्याग से) पदार्थों को भोग: सब भोग भगवान् की देन जान। मत ललचा। किसका धन है? सब पदार्थ परमेश्वर के हैं।

उपासक सारा जगत् भगवान् से आच्छादित जाने, सब रचना में ईश्वर की सत्ता को शासन करती हुई समझे, सब भोज्य पदार्थों को परमेश्वर का दान माने, इस समर्पणरूप त्याग से भोग भोगे, धन धनवान्का प्रसाद जानकर, लालच न करे।

विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभय ँ सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतश्नुते

विद्या और अविद्या दोनों को—जो इकट्ठे जानता है, जो ज्ञान और कर्म को एक साथ आराधता है, परा और अपरा विद्या तथा कर्मकाण्ड को एक साथ साधन करता है, वह कर्मकाण्ड से मृत्यु को तरकर परा विद्या से अमृत-मोक्ष को प्राप्त होता है। भक्तियुक्त कर्म निर्बन्ध का कारण होता है। इसलिये निष्काम कर्म-कर्त्ता भक्त, मृत्यु को पार कर, परा विद्या से परमपद—मोक्ष को—प्राप्त करता है।

केनोपनिषद्

केनेषितं पतति प्रेषितं मनः
केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः
केनेषितां वाचमिमां वदन्ति ?
चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ?

शिष्य ने गुरुसे पूछा कि यह मन इष्ट वस्तुके प्रति किससे प्रेरित होकर जाता है? मुख्य प्राण किससे जोड़ा हुआ विशेषता से चलता है? इस वाणी को किसकी प्रेरणा से बोलते हैं? और आंख-कान को कौन देव कार्य्यों में जोड़ता है?

इन्द्रियों का प्रेरक, सञ्चालक और नियन्ता कौन देव है यही ऊपर के प्रश्नों में पूछा गया है।

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो
यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः।
चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः
प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥२॥

गुरुने उत्तर में कहा कि सब इन्द्रियों का प्रेरक आत्मा है। वह कान का कान है, मनका मन है, निश्चय से वाणी की वाणी है, वह प्राणका प्राण है, आंख की आंख है। बुद्धिमान् पुरुष ऐसा जानकर, इसलोक से मरकर अमृत—मुक्त—हो जाते है।

आत्मा ही सब इन्द्रियों का प्रेरक है। वही श्रोता, मन्ता और द्रष्टा है, इन्द्रियां केवल साधन हैं। देखने, सुनने और जानने वाला आत्मा है। प्राण भी उसी की प्रेरणा से आता जाता है। आत्मा चेतन ज्ञानस्वरूप है। उसी की चेतन-सत्ता का प्रकाश इन्द्रियों में होता है। जो बुद्धिमान् पुरुष आत्मा के ऊपर-कहे स्वरूप को समझ जाते हैं, आत्म-सत्ता के पूरे विश्वासी हो जाते हैं, वे मृत्युलोक से छूटकर अमर-पद पा लेते हैं।

यच्छ्रोत्रेण न शृणोति
येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि
नेदं यदिदमुपासते ॥ ७ ॥

जो कानसे नहीं सुनता किन्तु जिससे यह कान सुना गया है अर्थात् जो कर्णेन्द्रिय का कर्त्ता है, तू

उसीको ब्रह्म जान। ब्रह्मका जैसा वर्णन शब्द मात्रसे करते हैं, वैसा ब्रह्म नहीं है।

परमेश्वर कानसे नहीं सुनता है किन्तु आत्मसत्ता से सब कुछ जानता है। कानोंके नियम को नियत करनेवाला वही है। गुरूने शिष्य को कहा कि तू उसी को ब्रह्म जान। ब्रह्मका जैसा वर्णन शब्द मात्र से करते है. वैसा ब्रह्म नहीं है।

यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते

जो स्वांससे नहीं जीता, जिससे स्वांस आता जाता है. तू उसी को ब्रह्म जान। यह ब्रह्मका जैसा वर्णन प्राणोपासना वाले करते हैं, वैसा ब्रह्म नहीं है।

प्राण-वायु परमेश्वर नहीं है। यह प्राण-अपान के नियम का नियत करने वाला है। गुरुने शिष्य से कहा कि तू उसी को ब्रह्म जान। प्राण-अपानरूप

पवन की उपासना करने वाले ब्रह्मका जैसा वर्णन करते है वैसा ब्रह्म नहीं है।

यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि
नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपं,
यदस्य त्वं यदस्य च देवेष्वथ नु
मीमांस्यमेव ते मन्ये विदितम् ।१

यदि तू ऐसा मानता है कि मैं ब्रह्मका पूरा स्वरूप जानता हूं, तो निश्चय तू अल्पही जानता है। जो इस ब्रह्मका स्वरूप तू जानता है और जो इसका स्वरूप देवों में जाना जाता है वह भी स्वल्प ही है। इस कारण जो तू ने जाना है वह तुझे मनन ही करना चाहिये, यह मैं मानता हूँ।

ब्रह्मका स्वरूप अनन्त है। उसकी लीला अपार है। उसके जानने का अभिमान नहीं करना चाहिये। गुरूने शिष्य से कहा कि यदि ब्रह्म-ज्ञान का तू अभि-

मान करता है तो तू बहुत थोड़ा जानता है। क्योंकि अनन्त स्वरूप ईश्वर मानुषी मति की सीमा में बँध नहीं सकता। उसका जो प्रकाश तेरे में है और जो देवों में पाया जाता है वह भी अल्प ही है। इस कारण, मेरी मति में तुझे ब्रह्मका चिन्तन ही करना चाहिये। तू विश्वासी बन, परन्तु ब्रह्म-ज्ञान का अहंकार न कर।

नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च।
यो नस्तद् वेद तद् वेद नो न वेदेति वेद च।

गुरुके कथन को सुनकर शिष्यने कहा—मैं ऐसा नहीं मानता कि मैं ब्रह्मके स्वरूप को भली प्रकार जानता हूँ और न ही कि नहीं जानता किन्तु जानता हूं। जो हममें से उसको जानता है वह जानता है, वह यही जानता है कि मैं नहीं नहीं जानता हूँ किन्तु जानता हूं।

ब्रह्म-ज्ञान का अभिमान करना तो निरा अहंकार

है। परन्तु ब्रह्म नहीं है यह भी विश्वासी नहीं मानता। अनन्त शक्तिमय ब्रह्म है, इतना स्वीकार ही समीचीन है। शिष्य गुरुको यह दर्शाता है कि अनन्त का होना मैं स्वीकार करता हूं, परंतु उसके ज्ञानका अभिमान मैं नहीं करता।

यस्यामतं तस्य मतं, मतं यस्य न वेद सः
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्

जिसका वह ब्रह्म अमत है-नहीं जाना हुआ है— उसका जाना हुआ है। जिसका जाना हुआ है वह नहीं जानता। ज्ञानियों से वह अविज्ञात है और न जानने वालों से जाना हुआ है।

मनन, चिन्तन और वर्णन में, अनंत तथा अगम्य ब्रह्मका पूर्ण स्वरूप नहीं आता। इस कारण जो जन उसे अनंत, परम सूक्ष्म, और अलक्ष्य जानते हैं वे ही उसे जानते हैं। ज्ञानाभिमानी मनुष्य उसे नहीं जानते।

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथतैदनुशिष्यात् अन्यदेव तद् विदितादथो अविदितादधि, इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद् व्याचचक्षिरे ॥३॥

आत्मा का वर्णन करने के अनन्तर ब्रह्म का निरूपण करते समय गुरु ने शिष्य से कहा कि वह ब्रह्म इन्द्रियों से जाना नहीं जाता। वाणी के व्यापार से भी बाहर है। उसका स्वरूप इन्द्रियों से अगोचर तथा अगम्य है। ऐसे अरूप और अवर्णनीय ब्रह्म का कोई कैसे वर्णन कर सकता है यह हम नहीं जानते। न ही यह बात हमारी समझ में आती है। वह ब्रह्म तो जाने हुए स्वरूप तथा न जाने हुए भेद से भिन्न है। वास्तव में वह अगम्य है। ऐसा ही पूर्वज ऋषिजनों से हम सुनते आये है।

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यन्ति
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते

जो आँख से नहीं देखता किंतु जिससे नेत्र देखते है, तू उसी को ब्रह्म जान। ब्रह्म का जैसा वर्णन साकारवादी करते है, वैसा ब्रह्म नहीं है।

परमेश्वर निराकार है, अशरीर है और बंधन से रहित है। इसी कारण वह आँख से नहीं देखता किंतु ज्ञानस्वरूप है। आँखे उसी के नियत किये नियम में देखती है। गुरु ने शिष्य से कहा कि तू उसी अरूप और निराकार परमेश्वर को ब्रह्म जान ब्रह्म का जैसा वर्णन साकारवादी करते है, वैसा ब्रह्म नहीं है।

(उपनिषद)

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं,
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्,
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ६-७)

अर्थ—हम ईशोंके परम महेश्वर। और देवो के परम देव, पतियो के परम पति तथा श्रेष्ठ जगदीश। देव को जानते है।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः।
सर्व व्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः।
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद ६-११)

अर्थ—एक देव सब भूतों में छिपा हुआ सर्व व्यापी, सर्व भूतो का अन्तरात्मा, कर्मका अध्यक्ष, सर्व भूतो का निवासी, साक्षी, चैतन्य, केवल और निर्गुण।

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनाना-
मेको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तत् कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्व पाशैः।

(श्वेताश्वतरोपनिषद ६-१३)

अर्थ—नित्यों में नित्य चेतनों में चेतन, बहुतोंमें एक कामनाओं का पूर्णकर्ता जो सांख्य योग्य से प्राप्त होता है उस कारण देव को जान कर जीव सब बेड़ियों से छुटकारा पाता है।

अणोरणीयान्महतो महीया-
नात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।

तमक्रतुः पश्यति वीतशोको

धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः ॥

(कठोपनिषद् १-२-२०)

अर्थ—आत्मा, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म बड़े से भी बड़ा है, जन्तुके हृदय में वह स्थित है निष्काम पुरुष विधाता के प्रसाद से आत्मा की महिमा शोक रहित होकर देखता है।

बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्यरूपं

सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतर विभाति।

दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च

पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम्।

(मुण्डकोपनिषद् ३-७)

अर्थ—वह महान है, दिव्य-अचिन्त्य, सूक्ष्म से सूक्ष्म वह चमकता है। वह दूर से भी दूर और

समीप से समीप है। देखने वाले के लिये हृदय गुफामें प्रतिष्ठित है।

गीता-तस्मादसक्तःसततं कार्यं कर्मसमाचर।
असक्तोह्याचरन्कर्म परमाप्नोतिपूरुषः॥

अर्थ—भगवान् कृष्ण अर्जुन को समझाते हैं कि हे अर्जुन। इससे तू अनासक्त होकर निरन्तर कर्म का अच्छी प्रकार आचरण कर, क्योंकि अनासक्त पुरुष कर्म करता हुआ परमात्मा को प्राप्त होता है। गीता अ० ३-१९।

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि॥

अर्थ—जनक इत्यादि ज्ञानीजन भी आसक्ति रहित कर्म द्वारा ही परम सिद्धि को प्राप्त हुये है। इसलिये लोक संग्रह को देखता हुआ भी तू कर्म करने ही योग्य है। गीता अ० ३-२०।

गीता-ब्रह्मनिर्वाण

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भवं वेगं सयुक्तः स सुखी नरः ॥
योऽन्तःसुखोन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।
सयोगीब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥
लभन्तेब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥

गीता, अ० ५

जो पुरुष इस संसार में, शरीर छूटने के पहले ही. काम और क्रोध से उत्पन्न हुए वेग को सह सकता है, वही योगी है, वही सुखी है। जो अपने अन्दर ही सुख मानता है, और उसी में रमता है, तथा आत्मा के अन्दर जो प्रकाश है, उसी से जो प्रकाशित है, वह ब्रह्म को प्राप्त होकर उसी में लीन होता है। जिनके पाप सत्कर्मों से क्षीण हो चुके

है, जिन्होने सब द्विविधाओं को छोड़ दिया है, अपने आपको जीत लिया है, सम्पूर्ण संसार के उपकार में लगे रहते है, वही ऋषि मोक्ष पाते है।

नीति-धर्म

दाक्षिण्यंस्वजने दया परजने शाठ्यं सदादुर्जने ।
प्रीतिःसाधुजनेस्मयःखलजने विद्वज्जने चार्जवम् ॥
शौर्यशत्रुजने क्षमा गुरुजने नारीजने धूर्तता ।
इत्थंये पुरुषःकलासु कुशलास्तेष्वेव लोकस्थितिः ॥

अपने लोगों के साथ उदारता, दूसरों पर दया, दुर्जनों के साथ शठता, साधुओ पर भक्ति, दुष्टो के साथ अभिमान, विद्वानो के साथ सरलता, शत्रुओं के साथ शूरता, बडे लोगों के साथ क्षमा, स्त्रियों के साथ चतुरता—इस प्रकार जो मनुष्य वर्त्ताव करने में कुशल है, वही संसार में रह सकते हैं और उन्हीं से संसार रह सकता है ॥२॥

यद्यदाचरति श्रेष्ठ स्तत्तदेवेतरो जनः
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥

अर्थ—श्रेष्ट पुरुष जो जो आचरण करता है। अन्य पुरुष भी उसके ही अनुसार वर्तते हैं। वह पुरुष जो कुछ प्रमाण कर देता है उसके ही अनुसार अन्य भी करते है। गी० अ० ३-२१

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथाकुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्त श्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्॥

अर्थ—हे भारत। कर्म में आसक्त हुये अज्ञानीजन जैसे कर्म करते है वैसेही अनासक्त हुआ विद्वान भी लोक शिक्षाको चाहता हुआ कर्म करे २५।

न बुद्धिभेदं जनये दज्ञानां कर्मसंगिनाम्।
जोपयेत्सर्व कर्म्माणि विद्वान्युक्तःसमाचरन्॥

अर्थ—ज्ञानी पुरुष को चाहिये कि कर्मोंमें आसक्ति वाले अज्ञानियों की बुद्धिमें भ्रम अर्थात कर्मोंमें

अश्रद्धा उत्पन्न न करे। किन्तु स्वयं परमात्मा के स्वरूप में स्थित हो, सब कर्मों को अच्छे प्रकार करते हुए उनसे भी करावे। अ० ३-२६

इन्द्रियाणि मनोबुद्धि रस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम्॥

अर्थ—हे अर्जुन! इन्द्रियां मन, और बुद्धि इसके वास स्थान कहे जाते हैं और यह क्रूर काम ही इन (मनबुद्धि-इन्द्रियों) द्वारा ज्ञान को आच्छादित करके इस जीवात्मा को मोहित करता है।

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्यभरतर्षभ
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्॥

अर्थ—इसलिये हे अर्जुन! तू पहले इन्द्रियों को वश में करके ज्ञान और विज्ञान के नाश करने वाले इस काम पापी को निश्चय पूर्वक मार। ३-४१

इन्द्रियाणि पराण्याहु रिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु पराबुद्धि र्योबुद्धेः परतस्तुसः ॥

अर्थ—इन्द्रियो को श्रेष्ठ, बलवान और सूक्ष्म कहते हैं इन्द्रियो से परे मन है और मनसे परे बुद्धि है तथा बुद्धि से भी जो अत्यन्त परे है वह आत्मा है। गीता अ०३-४२

एवं बुद्धे परंबुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रु महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥

अर्थ—इस प्रकार बुद्धिसे परे अर्थात् सूक्ष्म तथा बलवान् और श्रेष्ठ अपने आत्मा को जान कर और बुद्धि के द्वारा मन को वश में करके हे महाबाहो अपनी शक्ति को समझ कर इस दुर्जय काम रूप शत्रु को मार। अ० ३-४३

यस्य सर्वे समारम्भाः काम संकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितंबुधाः ॥

अर्थ—जिसके सम्पूर्ण कार्य कामना और संकल्पसे रहित है उस ज्ञान रूप अग्नि द्वारा भस्म हुये कर्मों वाले पुरुष को ज्ञानीजन भी पण्डित कहते है। (अध्याय ४-१९ वां)

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वंच मयि पश्यति।
तस्याहंन प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

अर्थ—हे अर्जुन! सुन, जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सब के आत्म स्वरूप मुझ को ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मेरे ही अन्तर्गत देखता है उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता हूं और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होताहै। ६-३०

चञ्चलं हि मनःकृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहंमन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥

अर्थ—अर्जुनने कृष्ण भगवान्से कहा कि हे महाराज! यह मन बड़ा चंचल और प्रमथन स्वभाव वाला

है बड़ा दृढ़ और बलवान है। इसलिये उस का वश में करना मैं वायु की भांति अति दुष्कर मानता हूं। ६ अ० ३४

असंशयं महाबाहो, मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते॥

अर्थ—तब अर्जुनको भगवान्‌ने समझायाकि हे अर्जुन! यह मन! निःसन्देह चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है परन्तु अभ्यास अर्थात् स्थिति के लिये बारम्बार यत्न करने से और वैराग्य से यह वश में हो जाता है इस लिये इसको अवश्य वशमें करना चाहिये।अ०६-३६

* चाणक्य नीति *

गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते न महत्योऽपि संपदः।
पूर्णेन्दुः किं तथा वंद्यो निष्कलंको यथाकृशः॥

अर्थ—सब स्थानों में गुण पूजे जाते हैं बड़ी सम्पति नहीं, पूर्णिमा का पूर्ण चन्द्रमा भी क्या वैसा वन्दित होता है जैसा बिना कलङ्क के द्वितीया का दुर्बल चन्द्रमा ॥

पृथिव्यां त्रीणिरत्नानि अन्नमपि सुभाषितम्
मूढैः पाषाणखंडेषु रत्नसंज्ञा विधीयते ॥

अर्थ—पृथ्वीपर जल, अन्न और प्रिय हितकारी वचन तीनही रत्न हैं, परन्तु मूर्खोंने पाषाणके टुकड़ों को रत्न गिना है।

धनहीनो न हीनश्च धनिकः स सुनिश्चयः।
विद्यारत्नेन हीनो यः स हीनः सर्व वस्तुषु

दोहा-हीन नहीं धनहीन जन, धन थिर नाहिंप्रवीन।
हीनन और बखानिये, विद्या हीन सुहीन ॥

मुहूर्त्तमपिजीवेच्च नरः शुक्लेन कर्मणा।
नकल्पमपि कष्टेन लोकद्वयविरोधिना ॥

अर्थ—उत्तम कर्म से मनुष्यों को मुहूर्त्त भर का जीना भी श्रेष्ठ है, दोनों लोकों के विरोधी दुष्ट कर्म से कल्प (कई लाख वर्ष) भर का भी जीना उत्तम नहीं है।

विदुर नीति

इदं च त्वां सत्यपरं ब्रवीमि,
पुण्यं पदं तात महाविशिष्टम्।
न जातु कामान्न भयान्नलोभा-
द्धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः॥

अर्थ—हे तात (प्यारे) तुमसे एक यह अत्युत्तम (सबसे श्रेष्ठ) मत कहता हूं कि काम से, लोभ से भय से और जीवन के भी लिये कभी धर्म को नहीं छोड़ना चाहिये॥ १

नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः।

त्यक्त्वाऽनित्यं प्रतितिष्ठस्वनित्ये
संतुष्य त्वं तोषपरो हि लाभः॥

क्योंकि धर्म नित्य है और सुख दुख अनित्य हैं अर्थात कभी आते हैं कभी चले जाते हैं। जीव (अपने शुद्धस्वरूप से) नित्य है, इसको बन्धन में रखने वाली शरीरादि उपाधियां अनित्य हैं, इसलिये हे राजन्! अनित्य वस्तुओं में मन न लगाकर नित्य की ओर ध्यान दो।

षड्दोषा पुरुषेणेह हातव्याभूतिमिच्छता।
निद्रा तंद्रा भयं क्रोध आलस्यंदीर्घसूत्रता॥

अर्थ—उन्नति शील पुरुषों को चाहिये कि निद्रा, तन्द्रा (ऊँघना), भय, क्रोध, आलस्य तथा दीर्घसूत्रता अर्थात् ढीलापन इन छः शत्रुओं का त्याग कर दे।

डित जन आर्य्योंके बतलाए धर्म्ममें सदा रमण करते हैं

द्वितीय विभाग

भगवान् बुद्धकी वाणी

बौद्ध और हिन्दूधर्म एक ही मूल की दो शाखाएँ हैं। वास्तव में बौद्ध धर्म और हिन्दू-धर्म एक ही है। हिन्दू लोग भगवान् बुद्ध को अवतार मान ते हैं। आज प्रत्येक धार्मिक और मांगलिक कार्य के समय तथा पूजा-संध्या के प्रारम्भ में भगवान् बुद्ध का स्मरण किया जाता है। यथाः—जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्य्यावर्तैक देशे कलियुगे कलि प्रथम चरणे बुद्धावतारे।

भगवान्‌के उपदेश

भगवान् बुद्ध के उपदेशो में यों तो वही बातें हैं, जो अन्य उच्च कोटि के गीता आदि आर्य सद्ग्रन्थों में है। बुद्ध ने स्वयं भी यही कहा है कि मैं यह आर्य

धर्म कह रहा हूँ, सनातन धर्म कह रहा हूं, किन्तु उन के उपदेशो में निर्वाण (मोक्ष) की प्राप्ति को ही प्रधानता दी गई है। इसलिये त्याग, वैराग्य और मन तथा इन्द्रियनिग्रह पर ही अधिक जोर दिया गया है।

बौद्ध और हिन्दू

भारत के बाहर यूरोप अमेरिका आदि देशों में भी बुद्ध को प्रायः सभी जानते है। समस्त संसार में भगवान् बुद्ध का जैसा आदर और जैसी ख्याति है, वैसी किसी भी महापुरुष की नहीं है। उनके अनुयायियो की संख्या भी संसार में अधिक है, जैसे कि हिन्दुओं और बौद्धों की मिलकर ७० सत्तर कोटि है। किन्तु हिन्दुओं के लिये यह आश्चर्य और खेद की बात है कि अपने इस नवम अवतार के कार्यों तथा उपदेशो के सम्बन्ध में जो ढाई सहस्र वर्ष की ही बात है, वहुत कम मनुष्यो को ही कुछ जानकारी है। अपने उन बौद्ध भाइयों के सम्बन्ध में

तो जो चीन, जापान, लङ्का, तिब्बत, वरमा, स्याम आदि में ४५ करोड़ की संख्या में वसते है—हिन्दुओं का ज्ञान नहीं के वरावर ही है।

मूल धर्मके अङ्ग

आवश्यकता इस वात की है कि अपने सहधर्मी स्वदेश या विदेश में कहीं भी हो यथा शैव, शाक्त, वैष्णव, आर्य, वौद्ध, जैन आदि उनमें परस्पर घनिष्ठता-सहानुभूति रहनी चाहिये। देश-काल के भेद से भाषा-भेष, रीति-रिवाज खान-पान में भेद होते हुए भी ये सभी सम्प्रदाय मूल में महान और सच्चे सनातन आर्य धर्म के ही अङ्ग हैं।

वौद्ध सिद्धान्त

भगवान् वुद्ध के सम्वन्ध में उनके 'धम्मपद' ग्रन्थ से कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते है। पाठक उनको पढ़कर देखेंगे कि कैसी सुन्दर वाणी में उन्होंने

उस समय की पाली भाषा में प्राचीन आर्य धर्म का ही प्रचार किया है।

बालवग्गो

'मधू'व मञ्ञति बालो याव पापं न पच्चति।
यदा च पच्चती पापं अथ दुक्खं निगच्छति॥

(मध्विव मन्यते बालो यावत् पापं न पच्यते।
यदा च पच्यते पापं अथ दुःखं निगच्छति)॥१०॥

अनुवाद—अज्ञ (जन) जबतक पाप का परिपाक नहीं होता, तब तक उसे मधु के समान जानता है। जब पाप का परिपाक होता है, तो दुखी होता है।

न हि पापं कतं कम्मं सज्जु खीरं'व मुञ्चति।
डहन्तं बालमन्वेति भस्माच्छन्नो व पावको

(नहिं पापं कृतं कर्म सद्यः क्षीरमिव मुञ्चति।
दहन् बालमन्वेति भस्माच्छन्न इव पावकः)॥१२॥

अनुवाद—ताजे दूध की भांति किया पाप कर्म (तुरंत) विकार नहीं लाता, वह भस्म से ढकी आग की भांति दग्ध करता अज्ञजन का पीछा करता है।

पंडितवग्गो

धम्मपीती सुखं सेति विप्पसन्नेन चेतसा।
अरियप्पवेदिते धम्मे सदा रमति पण्डितो॥

(धर्म पीतीः सुखं शेते विप्रसन्नेन चेतसा।
आर्यप्रवेदिते धर्मे सदा रमते पंडितः)॥ ४॥

अनुवाद—धर्म (रस) का पान करने वाला प्रसन्न-चित्त हो सुखपूर्वक सोता है, पंडित (जन) आर्यों के बतलाये धर्म में सदा रमण करते हैं।

अत्तवग्गो

अत्ता हि अत्तनोनाथो कोहि नाथो परोसिया।
अत्तना व सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं॥

आत्मा हि आत्मनो नाथः कोहि नाथः पर स्यात्।
आत्मनैव सुदान्तेन नाथं लभते दुर्लभम्) ॥४॥

अनुवाद—(पुरुष) अपने ही अपना स्वामी है, दूसरा कौन स्वामी हो सकता है, अपने को भली प्रकार दमन कर लेने पर (वह एक) दुर्लभ मालिक को पाता है (अर्थात् ब्रह्म को परम पद को, निर्वाण को)।

भगवद्गीता (अध्याय ६)

"उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैवह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥५॥
बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्ते तात्मैव शत्रुवत्" ॥६॥

लोकवग्गो

यथाबुब्बूलकं पस्से यथा पस्से मरीचिकं।
एवं लोकं अवेक्खन्तं मच्चुराजा न पस्सति॥

(अन्धभूतोऽयं लोकः तनु कोऽत्र विपश्यति ।
शकुन्तो जालमुक्त इवाल्पः स्वर्गाय गच्छति) ॥८८

अनुवाद—यह लोक अन्धे जैसा है, यहां देखनेवाले थोड़े ही हैं जाल से मुक्त पक्षी की भांति विरले ही स्वर्ग को जाते हैं ।

न [वे] कदरिया देवलोकं वजन्ति
बाला ह वे न प्पससन्ति दानं ।
धीरो च दानं अनुमोदमानो
तेनेव सो होति सुखी परत्थ ॥

न [वै] कदर्या देवलोकं व्रजन्ति
बाला ह वै न प्रशंसंति दानम् ।
धीरश्च दानं अनुमोदमानस्ते नैव
स भवति सुखी परत्र ॥११॥

अनुवाद—कंजूस देवलोक नहीं जाते, मूढ़ ही दान की प्रशंसा नहीं करते, धीर दान का अनु-

मोदन कर उसी कर्म से परलोक में सुखी होता है।

बुद्धवग्गो

किच्छो मनुस्सपटिलाभो
किच्छं मच्चानंजीवितं ।
किच्छं सद्धम्मसवणं
किच्छो बुद्धानं उप्पादो ॥

कृच्छ्रो मनुष्यप्रतिलाभः कृच्छ्रं मर्त्यानां जीवितम् ।
कृच्छ्रं सद्धर्मश्रवणं कृच्छ्रो बुद्धानां उत्पादः) ॥४॥

अनुवाद—मनुष्य (योनि) का लाभ कठिन है, मनुष्य का जीवन मिलना कठिन है, सच्चा धर्म सुनने को मिलना कठिन है, बुद्धों (परम ज्ञानियो) का जन्म कठिन है।

दुक्खं दुक्खसमुप्पादं दुक्खस्स च अतिक्कमं ।
अरियञ्चट्ठंगिकं मग्गं दुक्खूपसमगामिनं ॥

(दुःखं दुःखसमुत्पादं दुखस्य चातिक्रमम् ।
आर्याष्टांगिकं मार्गं दुःखोपशमगामिनम्) ॥१३॥

अनुवाद—(१) दुःख, (२) दुःख की उत्पत्ति,
(३) दुःख का अतिक्रमण और (४) दुःख
नाशक आर्य-अष्टांगिक मार्ग *—जो कि
दुःख को शमन करने की ओर ले जाता है।

सुखवग्गो

आरोग्यपरमा लाभा सन्तुट्ठी परमं धनं ।
विस्सासपरमा ञाती निब्बाणं परमं सुखं ॥

आरोग्यं परमो लाभः, सन्तुष्टिः परमं धनम् ।
विश्वासः परमा ज्ञातिः, निर्वाणं परमं सुखम्)॥८॥

---

* आर्य-अष्टांगिक मार्ग है—पवित्र धारणा, पवित्र संकल्प, पवित्र वचन, पवित्र कर्म, यथार्थ जीविका यथार्थ उद्योग, यथार्थ स्मृति और यथार्थ ध्यान ।

अनुवाद—नीरोग होना परम लाभ है, सन्तोष परम धन है, विश्वास सब से बड़ा बन्धु है, निर्वाण सब से बड़ा सुख है।

कोधवग्गो

सच्चम्भणेन कुज्झेय्य
दज्जा पस्मिम्पियाचितो।
एतेहि तीहि ठानेहि
गच्छे देवान सन्तिके॥

सत्यं भणेत न क्रुध्येत्, दद्यादल्पेऽपि याचितः।
एतैस्त्रिभिः स्थानैः गच्छेद् देवानामन्तिके॥४॥

अनुवाद—सच बोले, क्रोध न करे, थोड़ा भी मांगने पर दे, इन तीन बातों से पुरुष देवताओं के पास जाता है।

धम्मट्ठवग्गो

न तावता धम्मधरो यावता बहु भासति।

योो च अप्पम्पि सुत्वान

धम्मं कायेन पस्सति ॥

स वे धम्मधरो होति यो धम्मं नप्पमज्जति ॥

न तावता धर्मधरो यावता बहु भाषते ।

यश्चाल्पमपि श्रुत्वा धर्म्मं कायेन पश्यति ।

स वै धर्मधरो भवति यो धर्मं न प्रमाद्यति ॥४॥

अनुवाद—बहुत बोलने से धर्मधर (धार्मिक ग्रन्थोंका ज्ञाता) नहीं होता, जो थोड़ा भी सुनकर शरीर से धर्म का आचरण करता है, और जो धर्म में असावधानी (प्रमाद नहीं करता, वही धर्मधर है ।

नागवग्गो

सुखा मत्तेय्यता लोके अथो पेत्तेय्यतासुखा

सुखा सामञ्जता लोके अथो ब्रह्मञ्जतासुखा

(सुखा मात्तीयता लोकेऽथ पित्तीयता सुखा।
सुखा श्रमणता लोकेऽथ ब्राह्मणता सुखा) ॥१३॥

अनुवाद—लोक में माता की सेवा सुखकर है, और पिता की सेवा (भी) सुखकर है, श्रमण-भाव (सन्यास) लोक में सुखकर है और ब्राह्मणपन (निष्पाप होना) सुखकर है।

तण्हावग्गो

सब्बदानं धम्मदानं जिनाति
सब्बं रसं धम्मरसो जिनाति।
सब्बं रतिं धम्मरती जिनाति
तण्हक्खयो सब्बदुक्खं जिनाति ॥

सर्वदानं धर्मदानं जयति सर्वं रसं धर्मरसो जयति।
सर्वां रतिं धर्मरतिर्जयति तृष्णाक्षयः सर्वदुःखंजयति ।२१

अनुवाद—धर्म का दान सारे दानों से बढ़कर है, धर्म रस सारे रसों से प्रबल है, धर्म में रति

सब रतियों से बढ़कर है तृष्णा का विनाश
सारे दुखों को जीत लेता है।

भिखुवग्गो

हत्थसंञतो पादसंञतो
वाचाय संञतो संञतुत्तमो।
अज्झत्तरतो समाहितो
एको सन्तुसितो तमाहु भिक्खु॥

हस्तसंयतः पादसंयतो वाचा संयतः संयतोत्तमः।
अध्यात्मरतः समाहित एकः सन्तुष्टस्तमाहुभिक्षुम्॥२

अनुवाद—जिसके हाथ, पैर और वचन में संयम है,
जो उत्तम संयमी है, जो घट के भीतर
(अध्यात्म) रत, समाधियुक्त, अकेला
और सन्तुष्ट है उसे भिक्षु कहते हैं।

सब्बसो नाम-रूपस्मिं
यस्स नत्थि ममायितं।

असता च न सोचति स
वै भिक्खु वुच्चति ॥

सर्वशो नाम रूपे यस्य नाऽस्ति ममायितम् ।
असति च न शोचति सवै भिक्षुरित्युच्यते ॥८॥

अनुवाद—नाम रूप जगते में जिस की बिल्कुल ही ममता नहीं, न होने पर जो शोक नहीं करता वही भिक्षु कहा जाता है ।

ब्राह्मणवग्गो

बाहितपापोति ब्राह्मणो
समचरिया समणो ति वुच्चति ।
पब्बाजयमत्तनो मलं
तस्मा पब्बजितोति वुच्चति ॥

वाहितपाप इति ब्राह्मणः समचर्यः श्रमण इत्युच्यते ।
प्राव्रजयन्माऽऽत्मनो मलं तस्मात् प्रव्रजित इत्युच्यते ॥९॥

अनुवाद—जिस ने पाप को धोकर बहा दिया वह ब्राह्मण है, जो समता का आचरण करता है, वह समण (श्रमण=सन्यासी) है, चूंकि उस ने अपने चित्त-मलों को हटा दिया, इसी लिये वह प्रव्रजित कहा जाता है।

यस्स कायेन वाचाय मनसा नत्थि दुक्कतं
सम्वुतं तीहि ठानेहि तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं

यस्य कायेन वाचा मनसा नाऽस्ति दुष्कृतम्।
संवृतं त्रिभिः स्थानैः तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥६॥

अनुवाद—जिस के मन वचन काय सेदुष्कृत (पाप) नहीं होते, जो इन तीनों ही स्थानों में संवर (संयम) युक्त में उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

न जटाहि न गोत्तेहि
न यच्चाहोति ब्राह्मणो

म्हि सच्चंच धम्मो च
सोसुचो सो च ब्राह्मणो ॥

जटाभिर्न गोत्रैर्न जात्या भवति ब्राह्मण ।
स्मिन् सत्यं च धर्मश्च स शुचिः स च ब्राह्मणः ॥११

ुवाद्—न जटासे, न गोत्रसे, न जन्म से ब्राह्मण
होता है, जिसमें सत्य और धर्म है, वही
शुचि (पवित्र)है, और वही ब्राह्मण है ।

ालया न विज्जन्ति अञ्ञाय अकथंकथो ।
तोगधं अनुप्पत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥

स्याऽऽलया न विद्यन्त आज्ञायाऽकथंकथी
अमृतावगाधमनुप्राप्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥ २६ ॥

ुवाद्—जिसको आलय (तृष्णा) नहीं है, जो भली
प्रकार जान कर अकथ (पद)का कहने
वाला है, जिसने गाढ़े अमृत को पा लिया,
उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं ।

(धम्मपद के अतिरिक्त भगवान बुद्ध के कुछ और उपदेश उनके अन्य ग्रन्थों से यहाँ दिये जाते हैं)।

वर्ण-व्यवस्था खण्डन (वासेट्ठ सुतंत २।५।८)

एक समय जब भगवान बुद्ध वन खण्ड में विहार कर रहे थे वशिष्ठ और भारद्वाज नाम के दो ब्राह्मण वर्ण व्यवस्था पर वाद-विवाद करते भगवान के पास पहुँचे। भारद्वाज बोला जाति से ब्राह्मण होता है या कर्म से ? भगवान बुद्ध बोले सुनो मैं क्रमशः कहता हूं।

प्राणियो की जातियों में एक दूसरे से जाति का भेद है। तृण और वृक्ष में भी जानते हो (इसके लिये) वह प्रतिज्ञा नहीं करते, जाति का लिङ्ग है उनमें जातियां एक दूसरे से भिन्न हैं। फिर कीट पतङ्ग से चीटी तक जाति का लिङ्ग है. लम्बी पीठ वाले पादोदर (जिसका उदर ही पैर का काम करे) सांप को भी जानते हो।

फिर आकाश चारी पत्रयान (पक्षियों) को भी जानते हो जैसे इन जातियों में जाति का अलग २ लिङ्ग है इस प्रकार का जाति लिङ्ग मनुष्यों में अलग अलग नहीं है। न केशों में, न शिर में, न कान में, न आंख में: न मुख में. न नासिका में, न ओठ में. न भौं में. न ग्रीवा में, न कंधे में, न पीठ में. न पेट में, न श्रोणी में, न उर में, न गोप्य स्थान में, न मैथुन में, न हाथ में. न पैर में, न उंगली में, न नख में, न जंघा में. न उरु में, न वर्ण या स्वर में, जैसा कि अन्य जातियो मे जाति का कोई पृथक लिङ्ग नहीं है। मनुष्यों के शरीर पर यह भेदक लिङ्ग नहीं मिलता मनुष्यों में भेद सिर्फ संज्ञा मे है।

प्राचीन ब्राह्मण कैसे थे उनका पतन कैसे हुआ ?

एक समय जब भगवान् श्रावस्ती के अनाथपिंडक के जेतवनविहार में अपने शिष्यों-समेत विराजमान थे, कोशल-देश के कुछ सम्पन्न अति वृद्ध ब्राह्मण

लोग वहां उपस्थित हुये, और नियमपूर्वक शिष्टाचार के साथ बैठे तथा कुछ धर्म-चर्चा करने के बाद उन लोगो ने अति नम्रतापूर्वक भगवान से प्रश्न किया कि "हे भगवन्! वर्तमान समय में ब्राह्मणों का जैसा आचार-विचार है, क्या प्राचीन काल के ब्राह्मणों का भी आचार-विचार ऐसा ही था?"

भगवान् ने कहा—"नहीं, वर्तमान समय के ब्राह्मणो के आचार-विचार की तरह प्राचीन समय के ब्राह्मणों का आचार-विचार नहीं था।"

वृद्ध ब्राह्मणों ने भगवान् से प्रार्थना की—'हे भगवन्! तो फिर प्राचीन समय के ब्राह्मणों के आचार-विचार कैसे थे? उसे आप कृपा करके विस्तार के साथ कहिए।"

वृद्ध ब्राह्मणोंके बचन सुनकर भगवान बोले–'प्राचीन ऋषि ब्राह्मण लोग संयत आत्मा और तपस्वी होते थे। वे लोग पांचो काम इन्द्रियों के सुख को छोड़-

कर आत्म कल्याण में निरत रहते थे। उन ब्राह्मणों के पास पशु, सोना, धान्य आदि वस्तुएँ नहीं होती थीं। स्वाध्याय करना ही उनका धन-धान्य था। वे मित्रता, करुणा, मुदिता, उपेक्षा-रूपी ब्रह्म-विहार धारणा में निरत रहा करते थे। गृहस्थ लोग जो भोजन बनाकर द्वार पर उपस्थित ब्राह्मण को श्रद्धा-पूर्वक दान करते थे, उसी को ग्रहण करके वे सन्तोष पूर्वक अपना निर्वाह करते थे। भाँति-भाँति के रंगीन और कोमल वस्त्र तथा बिछौनों के व्यवहार करने-वाले. तरह-तरह के रंग बिरंगे और ऊँचे मकानों में वास करनेवाले लोग सारे देश के दूर २ प्रान्तों से आकर उन ब्राह्मणों के सामने मस्तक नवाते थे। वे ब्राह्मण अवध्य, अजेय और धर्म से रक्षित होते थे और उनको सब कहीं कोई भी अपने दरवाजे पर खडे होने से नहीं रोकता था। पहले ब्राह्मण पैंतीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करके विद्या और आचार

के अन्वेषण में लगे रहते थे। वे ब्राह्मण दूसरे की स्त्री से संभोग नहीं करते थे और न कभी स्त्री को खरीदते थे, विवाह करके परस्पर प्रेमपूर्वक भली भाँति मिल-जुलकर रहना पसंद करते थे। वे ब्राह्मण अपनी स्त्री के साथ भी बिना ऋतु के, जो रजोदर्शन के बाद होता है, कभी दूसरे समय में मैथुन-कर्म नहीं करते थे। वे ब्रह्मचर्य, शील, सरलता, मृदुता, तप, सहानुभूति, दया-भाव और सहनशीलता की शिक्षा देते थे। और ब्रह्मचर्य, क्षमा एवं शील की सदा प्रशंसा किया करते थे। वे ब्राह्मण चावल, वस्त्र बिछौना, तेल और घृत धर्मपूर्वक माँगकर संग्रह करते थे, और उसी से अपना यज्ञ-कर्म साधन किया करते थे। यज्ञ में कभी गौ नहीं मारते थे। माता, पिता, भाई तथा अन्य संबन्धियों की तरह गौ भी हमारी परम मित्र है, उसमें औषधियाँ पैदा होती है। ये गौवें अन्न देनेवाली, वस्त्र देनेवाली, सौंदर्य

देनेवाली और सुख देनेवाली है, इस सच्ची वात को जानकर वह गौवो को नहीं मारते थे। वे ब्राह्मण लोग प्रसन्न-वदन, विशाल-काये, सुन्दर, यशस्वी, धर्म-परायण और अपने सब प्रकार के कर्तव्यों के पालन में सदा उत्सुक रहते थे। जब तक ब्राह्मणोंके ऐसे अच्छे आचरण रहे, तब तक वे सुखी और मेधा-सम्पन्न थे और प्रजा भी सुखी थी।"

ब्रह्म-सायुज्य कैसे लाभ होता है ?

एक समय भगवान् अपने पांच सौ शिष्यों के साथ विचरते हुए कोशलराज के मनसाकट ग्रामके, जो ब्राह्मणो की वस्ती थी, दक्षिण ओर अचिरवती नदी के किनारे आम के वाग में ठहरे थे। इसी समय पूर्वोक्त वाशिष्ठ और भारद्वाज नामक दोनों ब्राह्मणोंमें ब्रह्म-सायुज्य (ब्रह्म के संग एकता) के विषय में विवाद होने लगा। भगवान् बुद्ध ने उन्हे समझाया कि असद्गुणो से ब्रह्मसायुज्य नहीं प्राप्त हो सकता।

जैसे एक आदमी तैरकर नदी पार करना चाहता हो, किन्तु यदि उसके हाथ-पैर जंजीरों से जकड़े हों, तो वह नदी पार नहीं कर सकता, ठीक इसी प्रकार जो शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि विषयो के बंधन से बँधे है, काम, हिंसा, आलस्य, अभिमान और संशय के आवरण से ढके है, ऐसे विघ्नों से ग्रसित, ब्रह्म-सायुज्य लाभ करने के सद्गुणों से विरत और तद्-विरुद्ध असद्गुणों में निरत रहनेवाले लोग मरने के बाद ब्रह्म-सायुज्य लाभ करेंगे, यह बिलकुल असम्भव है।

मोक्ष के विपरीत मार्गपर चलनेवाले व्यक्तिगण कभी भी ब्रह्म-सायुज्य लाभ नहीं कर सकते ! नियमित धर्माचरण को करके जिन लोगों के हृदय में सम्पूर्ण भूतों के प्रति असीम प्रेम, करुणा, सहानुभूति और समता प्रकट होती है, वे ही मनुष्य ब्रह्म-सायुज्य लाभ कर सकते है।"

संत कवीरदास

भल चाहो तो चेतहु, आय लगी है नाव।
बार बार पछिताहुगे, बहुरि न ऐसो दाव॥

सन्त कबीरदास जीके

शब्द

सन्तो सो सतगुरु मोहिं भावे जो आवागमन मिटावे।
डोलत डिगे न बोलत बिसरे अस उपदेश दृढ़ावे।
बिन श्रम हठ किरिया से न्यारी सहज समाधि लगावे।
द्वार निरोधे पवन न रोके नहिं अनहद उरझावै॥
यह मन जहां जाय तहां निर्भय समता से ठहरावै।
कर्म करै सब रहै अकर्मी ऐसी युक्ति बतावै।
सदा अनन्द फंद सो न्यारा भोग में योग सिखावै॥
तजि धरती आकाश अधर में प्रेम मड़ैया छावैं॥
ज्ञान शिखर को शून्य शिलापर आसन अचल जमावै
बाहर भीतर एकै देखै दूजा भाव मिटावै।
कहैं कबीर सोई गुरु पूरा घट बिच अलख लखावै॥

शब्द २

सन्तो मूल भेद कछु न्यारा, कोइ बिरला जाननहारा॥
मूँड़ मुंड़ाय भयो का धारे जटा जूट सिर भारा।

का भयो पशु सम नग्न फिरे वन अंग लगाये छारा॥
का भयो कंदमूल फल खाये वायु किये अहारा।
शीत उष्ण जल क्षुधा तृषा सहि तन जीरन करिडारा॥
साँप छोड़ि बाँबी को कूटे अचरज खेल पसारा।
धोबी से बस चले नहीं कछु गदहा काह बिगारा॥
योग यज्ञ जप तप संयम व्रत क्रिया कर्म विस्तारा।
तीरथ मूरत सेवा पूजा यह उरले व्यवहारा॥
हरि हर ब्रह्मा खोजत हारे धरि धरि जग अवतारा।
पोथी पाना में क्या ढूँढ़े वेद नेति कहि हारा॥
बिनु गुरु भक्ति भेद नहिं पावे भरमि मरे संसारा।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो मानो कहा हमारा॥

शब्द ३

संतो जीवत ही करु आसा,

मुये मुक्ति गुरु कहैं स्वारथी झूठा दे विश्वासा॥
जीवत समझै जीवत बूझै जीवत होय भ्रम नासा।
जियत मुक्त जो भये मिले तेहि मुयेहु मुक्ति निवासा॥

मनहींसे बन्धन मनहींसे मुक्ती मनहींका सकलविलासा।
जो मन भये जीयत में बस नहिं तौ देवैं बहु त्रासा॥
जो अब है सो तबहूं मिलिहैं ज्यों सपने जग भासा।
जहँ आसा तहँ बासा होवै मन का यही तमासा॥
जीवत होय दया सतगुरु की घट में ज्ञान प्रकासा।
कहैं कबीर मुक्त तुम होवो जीवत ही धर्म दासा॥

शब्द ४—सन्तो सतगुरु अलख लखावा,

परम प्रकाशक पुंज ज्ञान घन घट भीतर दर्साया॥
मन बुधि बानी जाहि न जानत वेद कहत सकुचाया।
अगम अपार अथाह अगोचर नेति नेति जेहि गाया॥
शिव सनकादि आदि ब्रह्मा के वह प्रभु हाथ न आया।
व्यास वशिष्ट विचारत हारे कोई पार न पाया॥
तिल में तेल काष्ट में अग्नी घृत पय माहिं समाया।
शब्द में अर्थ पदारथ पद में स्वर में राग सुनाया॥
बीज माहिं अंकुर तरु शाखा पत्र फूल फल छाया।
त्यों आतम में है परमातम ब्रह्म जीव अरु माया॥

कहैं कबीर कृपालु कृपा करि निज स्वरूप परखाया।
जप तप योग यज्ञ व्रत पूजा सब जञ्जाल छुड़ाया॥

शब्द ५—सन्तो निरञ्जन जाल पसारा।

स्वर्ग पताल मृत्युमण्डल रचि तीन लोक बिस्तारा॥
हरि हर ब्रह्मा को प्रगटायो तिन्हे दियो सिर भारा।
ठाम २ तीरथ रचि राखो ठगने को संसारा॥
चौरासी बिच जीव फसावे कबहूँ न होय उबारा।
जारि जारि भसमी करि डारे फिर देवे अवतारा॥
आवागमन रखे उरझाई बोरे भव की धारा।
सद्गुरु शब्द बिना नहिं चीन्हे कैसे उतरैं पारा॥
माया फांस फंसाया जीव सब आप बने करतारा।
सत्य पुरुष का अमर लोक है ताको मूँदा द्वारा॥
नेम धरम आचार यज्ञ तप ये उरलौ व्यवहारा।
जासों मिले अखण्ड मोक्ष सुख सो मारग है न्यारा॥
काल जाल से बांचा चाहो गहो शब्द ततसारा।
कहैं कबीर अमर करि राखों जो निज होय हमारा॥

संत कबीरदास

पुनीत-पथ

जो मन पर असवार है, सो कोइ विरला एक।
मन सब पर असवार है, पैडे करै अनेक ॥१॥
चींटी जहां न चढ़ि सकै, राई नहि ठहराय।
आवागमन को गम नहीं, तहां सकल जग जाय ॥२॥
तन रहि तो मन जात है, मन रहि तो तन जाय।
तनमन एकै ह्वै रहो, कबिरा हंस कहाय ॥३॥
जो जन भीजै राम रस, मग्न होत मन माहँ।
ज्यों दरपन की सुन्दरी, गहै न आवै बाहँ ॥४॥
करु बहियाँ बल आप हीं, छाँड़ि बिरानी आंस।
जेहि अँगना नदिया बहै, सो कस मरै पियास ॥५॥
हृदया भीतर आरसी, मुख देखो नहिं जाय।
मुख भी तब ही देखिये, दिल का धोका जाय ॥६॥

गहके टेक न छाँड़िया, चोंच जीभ जर जाय।
कहा तप्त अङ्गार है, गये चकोर चबाय ॥७॥
जो तू सांचा वानियां, सांची हाट लगाय।
अन्दर झाड़ू देह के, बाहर कहा बहाव ॥८॥
बड़े गये बड़ आपने, रोम रोम हंकार।
सदगुर के परिचय बिना, चारों वर्ण चमार ॥९॥
ऊपर की दोऊ गई, हिय की गई हेराय।
जाकी चारों ही गई तासों कहां बसाय ॥१०॥
मन जानै सब बात जानत हू औगुन करै।
काहे की कुसलात कर दीपक कूवैं परै ॥११॥
विषै कर्म की कैंचुली पहिरि हुआ नर-नाग।
सिर फौड़ै सूझै नहीं, को आगिला अभाग ॥१२॥
'कबीर' लज्जा लोक की सुमिरै, नाहीं साँच।
जानि बूझि कंचन तजै काठा पकड़ै कांच ॥१३॥
"कबिरा" माला काठ की कहि समझावै तोहिं।
मन न फिरावै आपना कहा फिरावै मोहिं ॥१४॥

विन रसरी गर जग बँधा, ताकर बंध अलेख।
दीनो दर्पन हाथ में. आंख विना क्या देख ॥१५॥
लोहा केरी नावरी, पाहन केरा भार।
सिर पर विष की मोटरी, उतरा चाहै पार ॥१६॥
जैसी मुख ते नीकसै, तैसी चालै चाल।
पार ब्रह्म नेड़ा रहै, पल में करै निहाल ॥१७॥
माया मुई न मन मुआ मरि मरि गया सरीर।
आसा तृष्णा न मुई यो कहि गया कबीर ॥१८॥
ऊंचे कुल का जनमिया करणी ऊँच न होय।
सोनन कलस सुरै इरा साधू निन्द्या सोय ॥१९॥
काजल केरी कोठरी तैसा यह संसार।
बलिहारी वा दास की पै सिर निकसन हार ॥२०॥
'कबिरा' औगुन ना गहै, गुन ही को ले बीनि।
घट घट महुके मधुप ज्यों परमात्मा ले चीन्हि ॥२१॥
जाके दिल में हरि बसै सो नर कलपै कांइ।
एकै लहरि समन्द की दुख दरिद्र सब जाइ ॥२२॥

आपा मेट्यां हरि मिलै हरि मेट्या सब जाइ।
अकथ कहानी प्रेम की, कह्यां न को पत्याय ॥ २३॥

अमूल्य रत्न

हम जाना कुल हंस हो, ताते कीना संग।
जो जनते बग बावरा, छुवन न देते अङ्ग ॥१॥

हीरा तहां न खोलिये, जहां कपट की हाट।
बांधहु चुप की मोटरी, लागहु अपने बाट ॥२॥

तौ लगि तारा जगमगै, जौ लगि उदय न सूर।
तौ लगि जीवहु कर्म बस, जब लगि ज्ञान न पूर ॥३॥

जाके दिलमें कपट नहिं, कपट न लागै ताहि।
जाके दिल में कपट है, कपटै कपटै खाहि ॥४॥

शील रत्न सब से बडा, सब रतनि की खान।
तीन लोक की सम्पदा, बसै शील महँ आन ॥५॥

गोधन, गजधन, वाजिधन और सबै धन खान।
जब आवै सन्तोष धन, सब धन धूरि समान ॥६॥

मन तो अस्मर होत है, मारे नाहि मराय।
ज्ञान रत्नकी करु शिला, घसत घसत घसि जाय ॥७॥

सुख देना दुख मेटना, दूरि करण सब बाध।
कहे कबीर हम कब मिले, प्रेम सनेही साध ॥ ८ ॥

साधू जगमें दुलभ है, और मिले वहु भेष।
नीर छीर ते जानिये बकुला हंस परेख ॥९॥

शब्द संभारे बोलिये, शब्द के हाथ न पांव।
एक शब्द कर औषधी, एक शब्द कर घाव ॥१०॥

दरबारी कानड़ा

घूँघट का पट खोल रे, तो को पीव मिलैंगे।
घट घटमें वह साईं रमता, कटुक वचन मत बोल रे॥
धन जोवन सो गरब न कीजै, झूठा पचरंग चोल रे।
सुन्न महलमें दियना बारि ले, आसन से मत डोल रे॥
जाग जुगुत सों रंग महलमे, पिय पायो अनमोल रे।
कहै कबीर आनन्द भयो है, बाजत अनहद ढोल रे॥

जोगिया

राम निरञ्जन न्यारा रे।
अंजन सकल पसारा रे॥
अंजन उत्पति वो उंकार।
अंजन मांड्या सव विस्तार॥
अंजन ब्रह्मा संकर इन्द।
अंजन गोपी संग गोविन्द॥
अंजन वाणी अंजन वेद।
अंजन कीया नाना भेद॥
अंजन विद्या पाठ पुरान।
अंजन फोकट कथहिं गियान।
अंजन पाती अंजन देव।
अंजन की करै अंजन सेव॥
अंजन नाचे अंजन गावै।
अंजन भेप अनन्त दिखावै॥

अंजन कहौं कहां लग केता ।
दान पुन्नि तप तीरथ जेता ॥
कहै कवीर कोई विरला जागै ।
अंजन छांड़ि निरंजन लागै ॥

हिंडोल

अब मैं अपने राम को रिझाऊँ ।
भव भंजन गुन गाऊं ॥ टेक ॥
गंगा जाऊं न जमना जाऊं,
ना कोई तीरथ जाऊँ ।
अठ सठ तीरथ घट ही के भीतर,
वाही में मलि मलि न्हाऊँ ॥
डाली तोरूं न पाती तोरूं,
ना कोई जीव सताऊँ ।
पात पात में प्रभू वसत है,
वाही को सीस नवाऊँ ॥

औषधि खाऊँ न बूटी खाऊँ,

न कोई बइद बुलाऊं ।

पूरन ब्रह्म बइद अविनासी,

वाही को नबज दिखाऊँ ॥

ज्ञान-कुठारा कस कर बाँधूं,

सबद कमान चढ़ाऊँ ।

पाँचो चोर बसै घट भीतर,

वाही को मारि गिराऊँ ॥

जोगी होय न जटा बढ़ाऊँ,

न अंग विभूति रमाऊँ ।

जो रंग रंगे आप विधाता,

और का रंग चढ़ाऊं ॥

चांद सुरज दोउ सम करि मानूं,

प्रेम की सेज बिछाऊं ।

कहत कबीर सुनो भाई संतो,

आवा गमन मिटाऊं ॥

कौसिया

तुम बिना राम कौन सो कहिये।
लागी चोट बहुत दुख सहिये॥
बेध्यो जीव बिरह के भालै।
राति दिवस मेरे उर सालै॥
को जाने मेरे तन की पीरा।
सतगुरु शब्द बहि गयो सरीरा॥
तुम से बैद न हम से रोगी।
उपजी बिथा कैसे जिवै वियोगी॥
निस बासर महं चितवत जाई।
अजहूं न आइ मिले रामराई॥

खमाच

अब तुम कब सुमरोगे राम।
जिवड़ा दो दिन का मिहमान॥

बालापन में खेल गंवाया।
तरुन हुवा तब काम सताया॥
विरधापन तन कापन लागा।
निकल गया अवसान॥
झूठी काया झूठी माया।
आखिर मौत निदान॥
कहत कबीर सुनो भाई संतों।
यह थोड़ा मैदान॥

जंगला

हरि तुम अपनी शरण मोहिं राखो।
गीध, व्याध, गज गणिका तारी
वेद-विमल-यश, भाखो॥
तुम तजि और ठौर नहिं मेरे
तेरे ही दरस अभिलाखो॥
सागर आगर गुण के उजागर
राग रंग रस चाखो॥

आसा राग

राम गति पार न पावै कोई।

चिन्ता मणि प्रभु निकट छांड़ि करि,

भ्रमि भ्रमि मति-बुधि खोई॥

तीरथ वरत जपै तप करि करि,

बहुत भांति हरि सोधै।

सकति सुहाग कहो क्यूं पावै,

अछता कंत विरोधै॥

नारी पुरुष बसैं इक संगा,

दिन दिन जाइ अबोले।

तजि अभिमान मिलै नहिं पिव कों,

ढूंढ़त बन बन डोलै॥

कहै कबीर हरि अकथ कथा है,

विरला कोई जानै।

प्रेम प्रीति वेधी अन्तर गति

कहूँ काहि को मानै॥

विहाग

डगमग छांड़ि दे मन बौरा।
अब तौ जरे बरे बनि आवै, लीन्हो हाथ सिंधौरा॥
होइ निसंक मगन ह्वै नाचौ लोभ मोह भ्रम छांड़ौ।
सूरौ कहा मरन थै डरै सती न संचै भांडौ॥
लोक वेद कुल की मरजादा इहै गलै में पासी।
आधा चलिकरि पीछा फिरि है ह्वै है जग में हाँसी॥
यहु संसार सकल है मैला, राम कहै ते सूचा।
कहै कबीर नाव नहिं छाड़ौ, गिरत परत चढ़ि ऊंचा॥

धनाश्री

कहा नर गरबसि थोरी बात।
मन दस नाज टका दस गठिया टेढ़ौ टेढ़ौ जात॥
कहा लै आयो यह धन कोऊ कहा कोऊ लै जात।
दिवस चारि की है पतिसाही ज्यो बनि हरियलपात॥

राजा भयो गांव सौ पायो टका लाख दस ब्रात।
रावन होत लङ्क कौ छत्रपति पल में गई बिहात॥
माता पिता लोक सुत वनिता अन्ति न चले संगात।
कहै कबीर राम भज बौरे जनम अकारथ जात॥

पीलू

अब हरि हूं अपनों कर लीन्हों।
प्रेम भगति मेरो मन भीनौं॥
जरै सरीर अंग नहिं मोरौं।
प्रान जाइ तो नेह न तोरौं॥
च्यंतामणि क्यूं पाइये ठोली।
मन दे राम लियो निरमोली॥
ब्रह्मा खोजत जनम गंवायो।
सोइ राम घट भीतर पायो॥
कहै कबीर छूटी सब आसा।
मिल्यो राम उपज्यो बिसवासा॥

बिहाग

मेरी अंखियां जान सुजान भई।
देवर भरम ससुर संग तजि करि, हरि पिव तहां गई॥
बालापन के करम हमारे, काटे जानि दई।
बांह पकरि करि किरिपा कीनी आप समीप लई॥
पानीकी बूंद थें जिन पिंड साज्या ता संगि अधिक करई।
दास कबीर पल प्रेम न घटई, दिन दिन प्रीति नई॥

मलार

जतन बिन मिरगनि खेत उजारे।
टारे टरत नहीं निसि बासर बिडरत नहीं बिडारे।
अपने अपने रस के लोभी करतब न्यारे न्यारे॥
अति अभिमान बदत नहिं कोऊ बहुत लोग पचिहारे।
बुधि मेरी किरषी गुरू मेरी बिझुका आखिर दोइ रखवारे।
कहैं कबीर अब खान न दैहौं बिरियां भली संभारे॥

कालिंगड़ा

जागि रे जीव जागि रे।

चोरन कौ डर बहुत कहत है,

उठि उठि पहरै लागि रे।

ररा करि टोप ममा करि बखतर

ज्ञान रतन करि पाग रे॥

ऐसे जौ अजराइल मारै

मस्तक आवै भाग रे।

ऐसी जागणी जे कोइ जागै

ता हरि देई सोहाग रे॥

कहै कबीर जाग्या ही चाहिये

क्या गृह क्या वैराग रे।

भैरवी

जो मैं बौरा तो राम तोरा।

लोग मरम का जानै मोरा॥

माला तिलक पहिरि मन मानो।
लोगनि राम खिलौना जानां॥
थोरी भगति वहुत अहंकारा।
ऐसे भगता मिलैं अपारा॥
लोग कहै कबीर बौराना।
कबिरा को मरम राम भल जाना॥

——

आसा

राम नाम हिरदै धरि, निरमोलिक हीरा।
सोभा तिहुं लोक, तिमिर जाय त्रिविध पीरा॥
त्रिसना नै लोभ लहरि, काम क्रोध नीरा।
मद-मच्छर-कच्छ-मच्छ, हरख सोक तीरा॥
कांमनी अरु कनक भँवर, बोवे बहु बीरा।
जन कबीर नौका हरि, खेवट गुरु कीरा॥

राग पहाड़ी-कहरवा

तोरी गठरी में लागे चोर बटोहिया कारे सोवे।
पांच पचीस तीन है चुरवा यह सब कीना सोर।
जागे सवेरा बाट अनेरा फिर नहि लागै जोर॥
भवसागर इक नदी बहतु है बिन उतरे जाव बोर।
कहै कवीर सुनो भाई साधो! जागत कीजै भोर॥

भैरवी

राम गुण न्यारे न्यारे न्यारे।
अबुझा लोग कहां लो बूझै बूझत हारि विचारे॥
केतेहि रामचन्द्र तपसी से जिन यह जग विलमाये।
केतेहि कान्ह भये मुरलीधर तिन्ह भी अन्त न पाये॥
मच्छ कच्छ वाराह स्वरूपी वामन नाम धराये।
केते बौद्ध कलङ्की कहिये तिन भी अन्त न पाये॥

केतेहि सिधि साधक सन्यासी जिन वनवास वसाये।
केतेहि मुनि जन गोरख कहिये तिन भी अन्त न पाये॥
जाकी गति ब्रह्मा नहि जानी शिव सनकादिक हारे।
ताके गुण नर कैसे कै पैहो कहहिं कबीर पुकारे॥

काफी

आई गवनवां की सारी-उमिरि अब हीं मोरि बारी।
साज समाज पिया लै आये और कहरिया चारी॥
बम्हना बेदरदी अँचरा पकरि कै जोरत गँठिया हमारी।
सखी सब गावत गारी॥
विधि गति वाम कछु समुझि परत ना वैरी भई महतारी।
रोय रोय अखिया मोरी पोछत घरवांसे देत निकारी।
भई सबको हम भारी॥
गौन कराय पिया लै चालै इत उत बाट निहारी।
छूटत गावँ नगर से नाता छूटै महल अटारी।
कर्म गति टरत न टारी॥

नदिया किनारे बलम मोर रसिया दीन्ह घूंघट पट डारी।
थरथराय तन कांपन लागे काहू न देख हमारी।
पिया लै आये गोहारी॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो यह पद लेहु विचारी।
अब कै गौना बहुरि नहिं औना करिले भेंट अकवारी।
एक बेर मिलि ले प्यारी॥

भैरवी

पंडित शोधि कहौ समुझाई।
जाते आवा गवन नसाई॥
अर्थ धर्म औ काम मोक्ष कहु. कौन दिसा बसे भाई।
उत्तरकी दक्खिन पूरबकी पच्छिम स्वर्ग पातालहिं माहीं।
बिना गोपाल ठौर नहिं कतहूँ नर्क जात धौं काहीं॥
अनजाने को स्वर्ग नरक है हरि जाने को नाहीं।
जेहि डरसे सब लोग डरतु है सो डर हमरे नाहीं॥

पाप पुण्य की संका नाहीं, स्वर्ग नरक नहिं जाई।
कहहिं कबीर सुनो हो सन्ता जहां के तहां समाई॥

सुघराई

कर मन प्रभु से प्रीति।
ऐसो समय वहुरि नहिं पैहौ जैहैं अवसर वीत।
तन सुन्दर छवि देख न भूलो यह वालू की भीत॥
सुख सम्पति सुपनेकी वतियां जैसे तृण पर शीत।
जाही करम परम पद पावे, सोई करम कर मीत॥
शरण आये सो सवही उवारे यही प्रभू की रीति।
कहै कबीर सुनो भाई साधो चलि हौ भै दलजीत।

देश

नर को नहिं परतीत हमारी।
झूठा बनिज कियो झूठे सों पंजि सवन मिलि हारी।
षट दर्शन मिलि पंथ चलायो तिरवेदा अधिकारी॥

राजा देश बड़ो परपंची रैयत रहत उजारी।
इतते उत उतते इत रहहू जमका साँड़ समारी॥
ज्यो कपि डोर बाँधि बाजीगर अपनी खुसी पसारी।
इहे पैठि उतपति परलय का विषया सबै विकारी॥
जैसे स्वान अपावन राजी त्यों लागी संसारी।
कहै कबीर वह अद्भुत ज्ञानी को मानै बात हमारी॥
अजहूं लेउ छुड़ाय कालसो सो करै सुरति संवारी॥

राग कालिंगड़ा

मन मस्त हुआ तब क्यों बोले।
हीरा पायो गांठ गठियायो बार बार वाको क्यो खोलै।
हल की थी जब चढ़ी तराजू पूरी भई तब क्यों तोलै॥
सुरत कलारी भइ मतवारी मद्वा पी गई बिन घोले।
हंसा पाये मान सरोवर ताल तलैया क्यों डोले॥
तेरा साहिब घट ही के भीतर बाहर नैना क्यों खोले।
कहै कबीर सुनो भाई साधो साहिब मिलगये तिलओले॥

देशी राग

पण्डित मिथ्या करहु विचारा।
न वहां श्रृष्टि न सिरजन हारा॥

थल अस्थूल पानि नहीं पावक रवि शशि धरणि न नीरा।
ज्योति स्वरूप काल नहिं जहवाँ, वचन न आहि शरीरा॥
कर्म धर्म किछुऊ नहिं उहवां न वहां मन्त्र न पूजा।
संजम सहित भाव नहिं जहवाँ सो धौं एक कि दूजा॥
गोरख राम एक नहिं उहवां ना वहां वेद विचारा।
हरिहर ब्रह्मा नहिं शिव शक्ती तीर्थन नाहिं अचारा॥
माय बाप गुरु जहवां नाहीं सो दूजा कि अकेला।
कहहिं कबीर जे अब की बूझै सोई गुरु हम चेला॥

खमाच

अपुन पौ आपन ही बिसरयो।
जैसे स्वान कांच मन्दिर में भरमित भूल मरयो।
ज्यों केहरि वपु निरखि कूप जल प्रतिमा देख परयो।

वैसेहि गज लखि फटिक शिला मो दशनन आनि अरयो ॥
मर्कट मूठि स्वाद नहिं बिहरे घर घर रटत फिरयो ।
कहै कबीर नलनी के सुगना तेहि कौने पकरयो ॥

पीलू ठुमरी

मैं केहि समझावो सब जग अन्धा ।
इक दुइ होय उन्है समुझावो सबहि भुलाना
पेट के धन्धा ॥
पानी कै घोड़ा पवन असवरवा ढरकि परै जैसे
ओस के बुन्दा ।
गहिरी नदिया अगम बहै धरवा खेवन हारा के
पड़िगा फन्दा ॥
घर की वस्तु नजर नहिं आवत दियना बारि के
ढूंढ़त अन्धा ॥

लागी आग सबै वन जरिगा बिन गुरु ज्ञान
भटकिगा मन्दा ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो ! इक दिन जाय
लँगुटी झार बन्दा ॥

मांड

भजन बिन बावरे तैंने हीरा सो जन्म गवाँया ।
कभी न आया सन्ता शरणा नातैं हरि गुण गाया ॥
बह बह मरचो बैल की नाईं सोय इहा उठि खाया ।
यह संसार हाट बनियें की सब कोई सौदे आया ॥
चातुर माल चौगुना कीनो मूरख मूल ठगाया ।
यह संसार फूल सेमर का शोभा देखि भुलाया ॥
मारी चोंच रुई निकसी तब सिर धुनि धुनि पछताया ॥
यह संसार मायाका लोभी ममता महल चिन्हाया ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो हाथ कछू नहिं आया ।

तिलंग

भजन बिन तीनो पन बिगरे।
बालापन तो खेल गंवायो तरुण गये अकरे॥
वृद्ध भये तब कछुक न सूझत अन्ध होय निबरे।
काहे को देह धरी मानुस की पसु समान गुजरे॥
मन तो धन यौवन मद मातो बोलत गर्व भरे।
कहै कबीर सुनो भाई साधो करले भजन हरे॥

बन्दे करले आप निवेरा।
आपु जियत लखि आपु ठौर करि मुवे कहां घर तेरा॥
यह अवसर नहिं चेतो प्राणी अन्त कोई नहिं तेरा।
कहैं कबीर सुनो हो सन्तो कठिन जाल का घेरा॥

पण्डित बाद बदो सो झूठा।
राम के कहे जगत गति पावे, खाँड़ कहे मुख मीठा॥

पावक कहे पावं जो डाहे जल कहे तृषा बुझाई।
भोजन कहे भूख जो भाजे, जो दुनियां तर जाई।
नर के संग सुवा हरि बोले, हरि परिताप न जाने।
जो कबहूँ उड़ि जाय जङ्गलमें तो हरि सुरति न आने।
बिनु देखे बिनु अरस परस बिनु नाम लिये क्या होई।
धन के कहे धनिक जो होवे निर्धन रहे न कोई॥
सांची प्रीति विषय माया सों हरि भक्तन की फांसी।
कहत कबीर एक राम भजे बिन बांधे जमपुर जासी॥

पण्डित देखहु मन में जानी।
कहु धौं छूति कहां से उपजी तबहिं छूति तुम मानी॥
नादे बिंदे रुधिर के संगे घट ही में घट सपचे।
अष्ट कमल है पुहुमी आया छूति कहां ते उपजे॥
लख चौरासी नाना बासन सो सब सरि भौ माटी।
एकै पाट सकल बैठाये छूति लेत धौं काकी॥

छूतिहि जेवन छूतिहि अचमन छूतिहि जगत उपाया।
कहहिं कबीर तू छूति विवर्जित जाके संग न माया॥

वसन्त राग

चल रे भौंरा जहँ नित बसन्त।
अवसर बीते नहिं फिर मिलन्त॥
सुख सागर है जहँ सुख निधान।
जहँ ग्रीषम करत न तनिक हान।
जहँ कुमुद फूल फूले अनन्त।
जहँ भँवर नित्य खेलत वसन्त॥ १॥
वह कुंज सघन तहाँ कुहके मोर,
जहँ प्रेम वूंद सागर हिलोर,
निज स्व प्रकास सो बन फुलन्त,
जहँ सुख निधान तहँ करु बसन्त॥ २॥

यहि वन में विषय विकार भोग
जहँ व्यापै संसय महा सोग
चलो चलें वहां यहा तजो सन्त।
जहाँ जोग जीत खेले वसन्त॥
तहां पुहुप अगर महकै सुवास
धवलित गुलाल अरु सेत भास
सत्पुरुष जहां नित मिले कंत
सुनु कह कबीर तहँ करो वसन्त॥

भैरव

है कोई, भूला मन समझावै।
यह मन चंचल चोर पाहरू छूटा हाथ न आवै॥
जोड़ि जोड़ि धन औंडे गोड़े जहां कोई लेन न पावै।
कण्ठ कपोल आनि जम घेरै दे दे सैन बतावै॥

खोटा दाम गांठ लिये डोलै बड़ी बड़ी बस्तु मोलावै।
बोय बबूल दाख फल चाहे सो फल कैसे पावै॥
गुरु की दया साधु की संगति ये दोउ मति बिसरावै।
कहै कबीर सुनो भाई साधो बहुरि न भव-जल आवै॥

होली—काफी

खेलत फाग बसन्त रैन दिन सहज सून्य में होरी।
सत गुरु दया साधु की संगति त्रिकुटी महल रचोरी॥
गुंजत भँवर कोकिला बोले सोहं सोहं सोरी।
बाजत ताल मृदंग झांझ अरु अगम निगम की झोरी॥
मानो कोटि भानु ससि उदये जहँ मनुआँ बिलगोरी।
सुरति सुहागिनि मन लिये मनुआँ दिये सुमतिकी खोरी॥
कहै कबीर मगन भई बिरहिन ब्रह्म ज्ञान झकझोरी॥

होली

होरी खेलन न जाने यह मन निपट अनारी।
काम क्रोध मद लोभ मोह की सिरधरि गागर भारी॥
एक भरै एक भरि लै आवै दूजे भरन की वारी॥
उठी पैंठ सौदागर आयो का करै वनिज व्यापारी॥
पिया सुहागिनि पिया संग खेलै और भई सब न्यारी।
या घट भीतर पांच मवासी और पचीसों नारी॥
इन्हें मारि होरी खेल पियारे काज सुधरि जाय सारी।
क्षमा दया को अबीर बनायो, सुमतिकी भरि लई झोरी॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो या विधि खेलो होरी॥

——

भैरवी

अपन पौ आपन हीं पायो।
शब्द ही शब्द भयो उजियारा सत्गुरु भेद बतायो॥

जैसे सुन्दरी सुत लै सूती स्वपन में गयो हेरायो।
जाग परी पलँग पै पायो ना कहिं गयो न आयो॥
जैसे कुवँरि कंठ मनि हीरा आभूषण बिसरायो।
संग की सखी मिलि भेद बतायो जिव को भरम मिटायो॥
जैसे मृग नाभी कस्तूरी ढूंढ़त वन वन धायो।
नासा स्वाद भयो जब वाके उलटि निरन्तर आयो॥
कहा कहौं वा सुख की महिमा ज्यों गूंगे गुड़ खायो।
कँहै कवीर सुनो भाई साधो ज्यों का त्यों ठहरायो॥

खमाच

कहा भयो मुख राम कह्यो रे।
ज्यों भुजङ्ग मंत्रन बस कीनो अन्तर्गत
वाको विष न गयो रे॥
माला तिलक भेष धरि हरि को
मागत मागत जन्म गयो रे।
जैसे वधिक ओट टाटी की बहु जीवन
को दाव दियो रे॥

अन्तर कपट वचन मुख शीतल
तन अधीन मन तउ न नयो रे।
कहै कबीर ताको संग ना कीजै
बिन विवेक जिन भेष लियो रे॥

भैरवी

खबर नहिं या जग में पलकी।
सुकृत करले राम सुमरले को जाने कल की॥ टेक॥
कौड़ी कौड़ी माया जोड़ी करि बातें छल की।
पाप पुन्य की बांध पोटरिया कैसे हो हलकी॥
तारन बीच चन्द्रमा झलके जोति झला झलकी।
मात पिता कुटुम्ब भाई बंधु तिरिया मतलब की॥
माया लोभी नगर बसत है या अपने कब की।
या संसार रैन का सपना ओस बूंद झलकी॥
कहे कबीर सुनो भाई साधो बातें सद्गुरु की॥

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी

'तुलसी' काया खेत है, मनसा भयो किसान।
पाप पुण्य दोउ बीज है, बुवे सो लुने निदान॥

श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीके भजन

शङ्कर स्तुति

भैरव-ताल चाचर

नमामीशमीशान-निर्वाणरूपम् ।
विभुं व्यापकं ब्रह्म वेद स्वरूपम् ॥
अजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहम् ।
चिदाकाशमाकाशवासं भजेहम् ॥१॥
निराकारमोंकार-मूलं तुरीयम् ।
गिराज्ञानगोतीतमीशं गिरीशम् ॥
करालं महाकाल-कालं कृपालम् ।
गुणागार-संसार-पारं नतोहम् ॥
कलातीत-कल्याण-कल्पान्तकारी ।
सदा सच्चिदानन्ददाता पुरारी ॥
चिदानन्द-सन्दोह-मोहापहारी ।
प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी ॥

न जानामि योगं जपं नैव पूजाम् ।
नतोऽहं सदा सर्वदा शम्भु तुभ्यम् ॥
जरा जन्म दुःखौघतातप्यमानम् ।
प्रभो पाहि आपन्नमामीश शम्भो ॥

भैरव-ध्रुपद (चारताल)

मोह तम तरणि हर रुद्र शंकर शरण.
हरण भय शोक लोकाभिरामं ।
बाल शशि भाल सुविशाल लोचन कमल,
काम शत कोटि लावण्य धामं ॥
सकल निरुपाधि निर्गुण निरंजन ब्रह्म,
कर्म पथमेकमज निर्विकारं ।
ज्ञान वैराग्य धन धर्म कैवल्य सुख,
सुभग सौभाग्य शिव सानुकूलम् ॥
तदपि नरमूढ़ आरूढ़ संसार पथ,
भ्रमत भव-विमुख तव पाद मूलं ।

तज्ञ सर्वज्ञ यज्ञेश अच्युत विभो,

विश्व भवदंश संभव पुरारी ॥

ब्रह्मेन्द्र चन्द्रार्क-वरुणाग्नि-वसु मरुत,

यम, अर्चि भवदंघ्रि सर्वाधिकारी ।

आसावरी (झपताल)

कम्बु कुन्देन्दु कर्पूर गौरं शिवं,

सुन्दरं सच्चिदानन्द कन्दं ।

सिद्ध सनकादि योगीन्द्र वृन्दारका,

विष्णु विधि वन्द्य चरणारविन्दं ॥

ब्रह्मकुल वल्लभं सुलभ मति दुर्लभं,

विकट वेषं विभुं वेद पारं ।

नौमि करुणा करं गरल गंगाधरं,

निर्मलं निर्गुणं निर्विकारं ॥

लोक नाथं शोक शूल निर्मूलिनं,

शूलिनं मोह तम भूरि-भानुं ।

काल कालं कलातीतमजरं हरं,

कठिन कलिकाल कानन कृशानुं ॥

तज्ञमज्ञान पाथोधि घट संभवं,

सर्वगं सर्व सौभाग्य मूलं ।

प्रचुर भव भंजनं प्रणत-जन रंजनं,

दास तुलसी शरण सानुकूलं ॥

रागआसा—(तालधुमाली)

नहिं असत्य सम पातक पुंजा ।
गिरि सम होंहि कि कोटिक गुंजा ॥
जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना ।
जहाँ कुमति तहँ विपति निधाना ॥
परहित वश जिनके मनमाहीं ।
तिन कहं जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥
सहसा करि पाछे पछताहीं ।
कहहिं वेद वुध ते वुध नाहीं ॥

कमठ पीठ जामहिं बरु बारा ॥
वन्ध्यासुत बरु काहुहि मारा ।
फूलहिं नभ बरु बहु विधि फूला ॥
जीव न लहै सुख हरि प्रति कूला ।
तृषा जाय बरु मृग जल पाना ॥
बरु जामहिं शश शीश विषाना ॥
अन्धकार बरु रविहि नसावै ।
राम विमुख न जीव सुख पावै ॥
हिम ते अनल प्रगट बरु होई ।
विमुख राम सुख पाव न कोई ॥

खमाच—धुमाली ताल

बरषहि जलद भूमि नियराये ।
यथा नवहिं बुध विद्या पाये ॥
बुन्द अघात सहै गिरि कैसे ।
खल के वचन सन्त सह जैसे ॥

छुद्र नदी भरि चलि उतराई।
जस थोरे धन खल बौराई॥
भूमि परत भा डाबर पानी।
जिमि जीवहि माया लपटानी॥
सिमिटि सिमिटि जलभरे तलावा।
जिमि सद्गुण सज्जन पहँ आवा॥
सरिता जल जलनिधि महँ जाई।
होइ अचल जिमि जन हरिपाई॥
अर्क जवास पात बिनु भयऊ।
जिमि सुराज खल उद्यम गयऊ॥
ससि सम्पन्न सोह महि कैसी।
उपकारी की सम्पति जैसी॥
कृषी निरावहिं चतुर किसाना।
जिमि बुध तजहिं मोह मदमाना॥
ऊपर बरसे तृण नहिं जामा।
सन्त हृदय जस उपज न कामा॥

कबहुं प्रबल चल मारुत,
जहँ तहँ मेघ विलाहिं।
जिमि कपूत -कुल उपजे,
सम्पति धर्म नसाहिं॥

अविनाशीका ध्यान

जय जय अविनाशी! घटघट वासी!
व्यापक परमानन्दा।
अविगति गोतीता चरित पुनीता,
माया रहित मुकुन्दा।
जेहि लागि विरागी अति अनुरागी,
विगत मोह मुनि-वृन्दा।
निशि वासर ध्यावहिं गुण गण गावैं,
जयति सच्चिदानन्दा।
जेहि सृष्टि उपाई त्रिविध बनाई,
संग सहाय न दूजा।

सो करहु अघारी चिन्त हमारी,

जानिय भक्ति न पूजा।

जो भव-भय-भंजन मुनि-मन-रञ्जन,

गंजन विपति बरूथा।

मन-वच-क्रम-बानी, छाँड़ि सयानी,

शरण सकल सुर यूथा।

रामकली

रुचिर रसना तू राम राम राम क्यों न रटत?
सुमिरत सुख सुकृत वढ़त अघ अमंगल घटत॥
विनु श्रम कलि-कलुष-जाल कटु कराल कटत।
दिन कर के उदय जैसे तिमिर—तोम फटत॥
जोग, जाग, जप विराग तप सुतीरथ अटत।
बांधिवे को भव गयन्द रेनु की रज बटत॥
परिहरि सुरमनि सुनाम गुञ्जालखि लटत।
लालच लघु तेरो लखि तुलसी तोहि हटत॥

कालिङ्गड़ा

जागु जागु जीव जड़ जोहै जग जामिनी।
देह गेह नेह जानु जैसे घन-दामिनी॥
सोवत सपने सहै संसृति-संताप रे।
वड़ो मृग वारि खायो जेंवरीको सांप रे॥
कहैं वेद बुध तू तौ बूझि मन माहिं रे।
दोष दुख सपनेके जागे ही पै जाहिं रे॥
तुलसी जागे ते जाय ताप तिहूँ तायरे।
राम नाम सुचि रुचि सहज सुभाय रे॥

देस—तीनताल

मेरो मन हरि जू हठ न तजै।
निसि दिन देउँ नाथ सिख बहु विधि करत सुभाव निजै।
ज्यों युवती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुख उपजै।
ह्वै अनुकूल बिसारि सूल सठ पुनि खल पतिहिं भजै।

लोलुप भ्रमत गृह पसु ज्यों जहं तहं सिर-पद त्रान बजै॥
तदपि अधम विचरत तेहि मारग कबहुं न मूढ़ लजै।
हौं हार्‌यो करि यतन विविध विधि अतिसय प्रबल अजै॥
तुलसिदास बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै।

सोहनी—तीनताल

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि राम भक्ति सुर सरिता आस करत ओसकनकी।
धूम समूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घनकी॥
नहिं तहं शीतलता न वारि पुनि हानि होत लोचनकी।
ज्यों गच-कांच बिलोक सेन जड़ छाँह आपने तनकी॥
टूटत अति आतुर अहार बस छति बिसारि आननकी।
कहँ लौ कहौं कुचाल कृपानिधि जानत हो गति मनकी॥
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख करहु लाज निज पनकी।

भैरवी तीन ताल

कबहुं मन विश्राम न मान्यो।
निसिदिन भ्रमत बिसारि सहज सुख जहँतहँ इंद्रिय तान्यो।
जदपि विषय-संग,सहे दुसह दुख विषमजाल अरुझान्यो॥
तदपि न तजत मूढ़ ममतावस जानत हूँ नहिं जान्यो।
जनम अनेक किये नाना विधि करम-कीच चित सान्यो॥
होइ न विमल विवेक-नीर बिनु वेद-पुरान बखान्यो।
निजहित नाथ,पिता-गुरु-हरिसों.हरषि हृदय नहिं आन्यो॥
तुलसीदास कब तृषा जाइ सर खनतहिं जनम सिरान्यो।

पीलू तीन ताल

जाऊँ कहां तजि चरन तिहारे।
काको नाम पतित पावन जग केहि अति दीन पियारे?
कौन देव बरियाय बिरद-हित हठि हठि अधम उधारे।
खग मृग,व्याध-पषान,विटप,जड़ जवन कवन सुर तारे॥

देव-दनुज-मुनि नाग मनुज सब, माया बिबस बिचारे।
तिन के हाथ दास तुलसी प्रभु कहा अपन पौ हारे॥

धनाश्री तीन ताल

काहे तें हरि मोहिं बिसारो।
जानत निज महिमा मेरे अघ, तदपि न नाथ संभारो।
पतित पुनीत दीन हित असरन-सरन कहत श्रुति चारो॥
हौं नहिं अधम सभीत दीन किधौं वेदन मृषा पुकारो।
खग-गनिका-गज-ब्याध-पांति जहँ तहँ हौं हूँ बैठारो॥
अब केहि लाज कृपानिधान परसत पनवारो टारो।
जौ कलिकाल प्रबल अति होतो तुव निदेस तें न्यारो॥
तौ हरि रोस भरोस दोष गुन तेहि भजते तजिगारो।
मसक विरंचि, बिरंचिमसकसम, करहु प्रभाव तुम्हारो॥
यह सामर्थ्य अछत मोहिं त्यागहु नाथ तहां कछु चारो।
नाहिंन नरक परत मोकहँ डर, यद्यपि हौं अति हारो॥
यहि बड़ि त्रास दास तुलसी प्रभु नामहुँ पाप न जारो।

कौशिया—तीन ताल

मोह जनित मल लाग विविध विधि,
कोटिहु जतन न जाई।
जनम जनम अभ्यास निरत चित
अधिक अधिक लपटाई॥
नयन मलिन पर नारि निरखि
मन मलिन विषय संग लागे।
हृदय मलिन वासना मान मद
जीव सहज सुख त्यागे॥
पर निन्दा सुनि श्रवन मलिन भये
वचन दोष पर गाये।
सब प्रकार मल-भार लाग
निज नाथ-चरन बिसराये॥
तुलसिदास व्रत-दान-ज्ञान-तप
शुद्धि हेतु श्रति गावै।

राम चरन-अनुराग-नीर बिनु
मल अति नास न पावै ॥

भैरवी

जाके प्रिय न राम वैदेही ।
तजिये ताहि कोटि वैरी सम जद्यपि परम सनेही ।
तज्यो पिता प्रहलाद, विभीषन बन्धु, भरत महतारी ।
बलि गुरु तज्यो कन्त ब्रजबनितनि भये मुद मंगलकारी ॥
नाते नेह रामके मनियत सुहृद सुसेव्य जहां लौं ।
अंजन कहा आंखि जेहि फूटै बहुतक कहौं कहां लौं ॥
तुलसी सो सब भांति परमहित पूज्य प्रान ते प्यारो ।
जासों होय सनेह राम पद एतो मतो हमारो ॥

देश-दादरा ताल

तूं दयालु दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी ।
हौं प्रसिद्ध पातकी तू पाप पुंज-हारी ॥

नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मोसों ?
मो समान आरत नहिं आरति हर तोसो ॥
ब्रह्म तू हौं जीव, हौं तू ठाकुर हौं चेरो ।
तात, मात गुरु सखा तू सब विधि हित मेरो॥
तोहि मोहिं नाते अनेक मानिये जो भावै ।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु ! चरन-सरन पावै ॥

धनाश्री

अब लौं नसानी अब न नसैहौं ।
राम कृपा भव-निसा सिरानी जागे फिर न डसैहौं ॥
पायो नाम चारु चिन्तामनि उर-करते न खसैहौं ।
स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचनहिं कसैहौं॥
परवस जानि हँस्यो इन इन्द्रिन निज बस ह्वै न हँसैहौं।
मन मधुपहिं पनकै तुलसी रघुपति-पद-कमल बसैहौं ॥

आसावरी

ममता ! तू न गई मेरे मन तें।

पाके केस जनमके साथी लाज गई लोकन तें॥

तन थाके कर कांपन लागे जोति गई नैनन तें।

श्रवन न वचन सुनत काहूके वल गये सव इन्द्रिन ते॥

टूटे दसन वचन नहिं आवत सोभा गई मुखन ते।

कफ पित वात कंठपर वैठे सुतहिं वुलावत करते॥

भाई वंधु सव परम पियारे नारि निकारत घर ते।

जैसेससिमंडल विच स्याहो छुटै न कोटि जतनतें॥

तुलसिदास वलि जाऊं चरन ते लोभ पराये धनते।

विलावल

हे हरि कवन जतन भ्रम भागै ?

देखत सुनत विचारत यह मन

निज सुभाव नहिं त्यागै॥

भक्ति, ग्यान, वैराग्य सकल
साधन यहि लागि उपाई।
कोउ भल कहहु देहु कछु कोऊ
असि वासना हृदय ते न जाई॥
जेहि निसि सकल जीव सूतहिं
तव कृपा पात्र जन जागै।
निज करनी विपरीति देखि मोहिं
समुझि महा भय लागै॥
यद्यपि भग्न मनोरथ विधि बस
सुख इच्छित दुख पावै।
चित्रकार कर हीन जथा
स्वारथ बिन चित्र बनावै॥
हृषीकेस सुनि नाम जाउँ बलि
अति भरोस जिय मोरे।
तुलसिदास इन्द्रिय-सम्भव दुख हरे
बनिहिं प्रभु तोरे॥

आसावरी (तीनताल)

कौन जतन विनती करिये।

निज आचरन विचारि हारि हिय मानि जानि डरिये॥
जेहि साधन हरि द्रवहु जानि जनसो हठि परिहरिये।
जाते विपति-जाल निसिदिन दुख तेहि पथ अनुसरिये॥
जानत हूं मन वचन करम परहित कीन्हे तरिये।
सो विपरीत देखि पर सुख विनु कारन ही जरिये॥
श्रुति पुरान सवको मत यह सतसंग सुदृढ़ धरिये।
निज अभिमान मोह ईर्षा वस तिनिहिं न आदरिये॥
सन्तत सोइ प्रिय मोहिं सदा जाते भवनिधि परिये।
कहौ अव नाथ! कौन वलतें संसार-सोक हरिये॥
जव कव निज-करुना-सुभाव तें द्रवहु तो निस्तरिये।
तुलसिदास विस्वास आन नहिं कत पचि २ मरिये॥

जहाँ सुमति तहाँ सम्पति नाना।
जहा कुमति तहँ विपति निदाना॥

संत रैदासजीके पद

खम्माच-अणाना

हरि सा हीरा छाँडि के।
करै आन की आस॥
ते नर यमपुर जाएंगे।
सत भाषै रैदास॥
रैदास रात न सोइये।
दिवस न करिये स्वाद।
अहनिसि प्रभुको सुमिरिये।
छाँड़ि सकल प्रतिवाद॥

विहाग—तीन ताल

भगती ऐसी सुनु रे भाई।
आई भगति तब गई बड़ाई॥
कहा भयो नाचे अरु गाये कहा भयो तप कीने।
कहा भयो जे चरन पखारे जौ लौं तत्व न चीन्हे॥

कहा भयो जे मूँड़ मुड़ायो कहा तीर्थ व्रत कीन्हे।
खाली दास भगत अरु सेवक परम तत्व नहिं चीन्हे॥
कह रैदास तेरि भगति दूर है भाग बड़े सो पावै।
तजि अभिमान मेटि आपा पर पिपलिक ह्वै चुनि खावै॥

राग बागेश्वरी—तीन ताल

प्रभु संगति सरन तिहारी।
जग जीवन राम मुरारी॥
गली गली को जल बहि आयो सुर सरि जाय समायो।
संगत के परताप महातम नाम गंगोदक पायो॥
स्वाति बूंद बरसै फनि ऊपर सीस विषै होइ जाई।
वही बूँद कै मोती निपजै संगति की अधिकाई॥
तुम चन्दन हम रेंड बापुरे निकट तुम्हारे आसा।
संगत के परताप महातम आवै बास सुबासा॥
जाति भी ओछी कर्म भी ओछा, ओछा कसब हमारा।
नीचे से प्रभु ऊँच कियो है कह 'रैदास' चमारा॥

कालिङ्गड़ा

गाइ गाइ अब का कहि गाऊँ।
गावन हार को निकट बताऊँ॥
जब लग है या तनकी आसा, तब लग करै पुकारा।
जब मन मिलौ आस नहिं तनकी तबको गावन हारा॥
जब लग नदी न समुद समावै, तब लग बढ़े हँकारा।
जब मन मिल्यो राम सागर सों तब यह मिटी पुकारा॥
जब लग भगति मुकुति की आसा, परम तत्त्व सुनि गावै।
जहं जहं आस धरत है यह मन, तहं तहं कछू न पावै॥
छांड़ै आस निरास परम पद तब सुख सति कर होई।
कह रैदास जासो और कहत है, परम तत्त्व अब सोई॥

भैरवी

रामा हो जग जीवन मोरा।
तू न विसारि राम मैं तोरा॥
संकट सोच पोच दिन राती।
करम कठिन मोरी जाति कुजाती।

हरहु विपति भावै करहु सो भाव।
चरण न छांड़ो जाव सो जाव॥
कह रैदास कछु देहु अलम्बन।
वेगि मिलो जनि करौ विलम्बन॥

भूप—कल्यान

राम मैं पूजा कहा चढ़ाऊँ।
फल अरु फूल अनूप न पाऊँ॥
थन तर दूध जो वछरू जुठारी।
पुहुप भंवर जल मीन विगारी॥
मलया गिरि वेधियो भुजङ्गा।
विष अमृत दोउ एकै संगा॥
मन ही पूजा मन ही धूप।
मन ही सेऊँ सहज स्वरूप॥
पूजा अरचा न जानूँ तेरी।
कह रैदास कवन गति मेरी॥

भैरवराग

पार गया चाहै सब कोई
रहि उस पार वार नहिं होई ॥
पार कहै उर वार से पारा ।
विन पद परसे भ्रमै गँवारा ॥
पाय परम पद मांझ मुरारी ।
तामें आप रमै वनवारी ।
पूरन ब्रह्म वसै सब ठाईं ।
कह रैदास मिले सुख साईं ॥

पीलू

आज दिवस लेऊं बलिहारा ।
मेरे घर आया राम का प्यारा ॥
आँगन बङ्गला भवन भयो पावन ।
हरिजन बैठे हरिजन गावन ॥
करूं डंडवत चरन पखारूं ।
तन मन धन उन ऊपर वारूं ॥

हरहु विपति भावै करहु सो भाव।
चरण न छांड़ो जाव सो जाव॥
कह रैदास कछु देहु अलम्बन।
वेगि मिलो जनि करौ विलम्बन॥

भूप—कल्यान

राम मैं पूजा कहा चढ़ाऊँ।
फल अरु फूल अनूप न पाऊँ॥
थन तर दूध जो बछरू जुठारी।
पुहुप भंवर जल मीन बिगारी॥
मलया गिरि वेधियो भुजङ्गा।
विष अमृत दोउ एकै संगा॥
मन ही पूजा मन ही धूप।
मन ही सेऊँ सहज स्वरूप॥
पूजा अरचा न जानूँ तेरी।
कह रैदास कवन गति मेरी॥

भैरवराग

पार गया चाहै सब कोई

रहि उस पार वार नहिं होई ॥

पार कहै उर वार से पारा।

बिन पद परसे भ्रमै गँवारा ॥

पाय परम पद मांझ मुरारी।

तामें आप रमै बनवारी।

पूरन ब्रह्म बसै सब ठाईं।

कह रैदास मिले सुख साईं ॥

पीलू

आज दिवस लेऊं बलिहारा।

मेरे घर आया राम का प्यारा ॥

आँगन बङ्गला भवन भयो पावन।

हरिजन बैठे हरिजन गावन ॥

करूं डंडवत चरन पखारूं।

तन मन धन उन ऊपर वारूं ॥

कथा कहैं अरु अरथ विचारें।
आप तरैं औरन को तारैं॥

विहाग

कहै रैदास मिलै निज दासा।
जनम जनम के काटैं पासा॥
यह अंदेस सोच जिय मेरे।
निसि वासर गुन गाऊं तेरे॥
तुम चिन्तत मेरी चिन्तहु जाई।
तुम चिन्तामनि हौ इक नाई॥
भगत हेतु तुम का नहिं कीना।
हमरी वेर भये बल हीना॥
कह रैदास दास अपराधी।
जेहि तुम द्रवहु सो भगति न साधी॥

पीलू

जो तुम तोरो राम मैं नहिं तोरूँ।
तुमसे तोरि कवन से जोरूँ॥

तीरथ बरत न करौ अन्देसा।

तुम्हरे चरण कमल का भरोसा॥

जहँ जहँ जाऊं तुमरी पूजा।

तुम सा जीव और नहिं दूजा॥

मैं अपनो मन हरि सों जोरौं।

हरि सों जोरि सबन सों तोर्यों॥

सब ही पहर तुम्हारो आसा।

मन क्रम वचन कहै रैदासा॥

कौशिया

जब राम नाम कहि गावैगा।

तब भेद अभेद समावैगा॥ टेक॥

जो सुख है या रस के परसे।

सो सुख का कहि आवेगा॥

गुरुप्रसाद भई अनुभव मति।

विष अमरित समझावेगा॥

कह रैदास मेटि आपा-पर।
तब वा ठौरहि पावैगा॥

आसावरी

नर हरि चञ्चल है मति मेरी
कैसे भगति करौं मैं तेरी॥
तू मोहिं देखै हौं तोहिं देखूं प्रीति परस्पर होई।
तू मोहिं देखै तोहि न देखूं यह मति सब बुधि खोई॥
सब घट अन्तर रमसि निरंतर मैं देखन नहिं जाना।
गुन सब तोर मोर सब अवगुन कृत उपकार न माना॥
मैं तै तोरि मोरि असमझि सों कैसे करि निस्तारा।
कह रैदास कृष्ण करुनामय जै जै जगत अधारा॥

भैरवी

ऐसो कुछ अनुभव कहत न आवै।
साहब मिलै तो को विलगावै॥
सब में हरि है हरि में सब है हरि अपनो निज जाना।
साखी नहीं और कोई दूसर जाननहार सयाना॥

बाजीगर सो राँचि रहा बाजी का मरम न जाना।
बाजी झूठ साँच बाजीगर जाना मन पतियाना॥
मन थिर होय तो कोई न सूझै जानै जानन हारा।
कह रैदास बिमल विवेक सुख सहज सरूप सँवारा॥

कल्याण राग

जो तुम गोपालहिं नहिं गैहौ।
तौ तुमका सुख में दुख उपजै सुखहि कहाँ ते पैहौ।
माला नाय सकल जग डहको झूठो भेष बनैहौ॥
झूठे ते सांचे तब होइ हौ हरि की सरन जब ऐहौ।
कनरस, बतरस और सबै रस झूठहिं मूड़ डुलैहौ॥
जब लगि तेल दिया में बाती देखत ही बुझि जैहौ।
जो जन राम नाम रंग राते और रंग न सोहैहौ॥
कह रैदास सुनो रे कृपानिधि प्रान गये पछितैहौ।

भैरवी

अब कैसे छुटै नाम रट लागी ॥

प्रभु जी तुम चन्दन हम पानी ।
जाकी अंग अंग वास समानी ॥

प्रभु जी तुम घन वन हम मोरा ।
जैसे चितवत चन्द चकोरा ॥

प्रभु जी तुम दीपक हम बाती ।
जाकी जोति बरै दिन राती ॥

प्रभु जी तुम मोती हम धागा ।
जैसे सोनहि मिलत सुहागा ॥

प्रभुजी तुम स्वामी हम दासा ।
ऐसी भक्ति करै रैदासा ॥
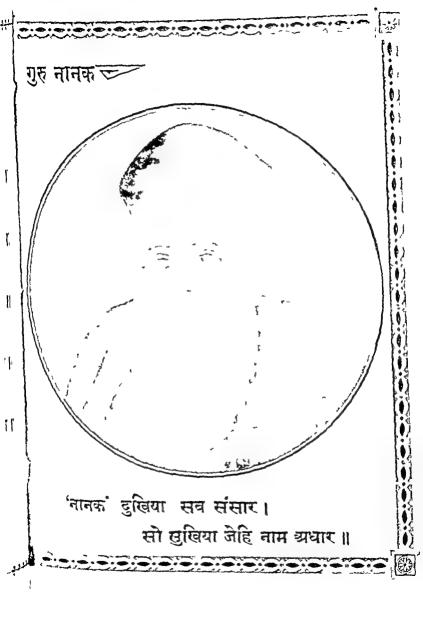
गुरु नानक
'नानक' दुखिया सब संसार।
सो सुखिया जेहि नाम अधार॥

गुरु नानक—विनय

कौसिया-विलम्बित तीन ताल

सुमरन कर ले मेरे मना।
तेरि बीती उमर हरि नाम बिना॥
कूप नीर बिनु धेनु छीर बिनु मंदर दीप बिना।
जैसे तरुवर फल बिनु हीना तैसे जन हरि नाम बिना॥
देह नैन बिन रैन चन्द्र बिन धरती मेह बिना।
जैसे पण्डित वेद विहीना तैसे प्राणी हरि नाम बिना॥
काम क्रोध मद लोभ निहारो छाँड़ दे छाँड़ दे संतजना।
नानक कहे सुनो भगवन्ता या जगमें नहिं कोई अपना॥

शङ्करा-तीन ताल

काहे रे बन खोजन जाई।
सर्व निवासी सदा अलेपा, तोही संग समाई॥
पुष्प मध्य ज्यों वास वसत है मुकर माहिं जस छाई।
तैसे ही हरि बसै निरन्तर घटही खोजो भाई॥

बाहर भीतर एकै जानौ यह गुरु ज्ञान बताई।
जन 'नानक' बिन आपा चीन्हे मिटै न भ्रम की काई॥

काफी-दीपचन्दी

बिसर गई सब तात पराई।
जब ते साध-सगत मोहि पाई॥
ना कोइ बैरी नाहिं बेगाना।
सकल सङ्ग हमरी बनि आई॥
जो प्रभु कीनो सो भल मान्यो।
यह सुमती साधू ते पाई॥
सब महँ रम रहिया प्रभु एका।
पेखि पेखि 'नानक' बिगसाई॥

आसावरी—तीनताल

हरि बिनु तेरा कौन सहाई।
काकी मातु पिता सुत बनिता को काहू को भाई॥
धन धरनी अरु सम्पति सगरो जो मान्यो अपनाई।
तन छूटे कछु संग न चालै कहा ताहि लपटाई॥

दीन दयाल सदा दुख भंजन तासों रुचि न बढ़ाई।
नानक कहत जगत सब मिथ्या जिउ सुपना रैनाई ॥

कहा मन विषयन सों लपटाई।
या जगमें कोउ रहन न पावै एक आवै एक जाई ॥
काको तन-धन सम्पति काकी कासों नेह लगाई।
जो दीखै सो सकल विनासै जिउँ बादर की छाहीं ॥
तजि अभिमान शरण सन्तन गहु मुक्ति होहि छिनमाहीं।
जन नानक भगवन्त भजन विनु सुख सुपनै भी नाहीं ॥

केदारा—तीनताल

जो नर दुख में दुख नहिं मानै।
सुख सनेह अरु भय नहिं जाके कञ्चन माटी मानै।
नहिं निन्दा नहि अस्तुति जाके लोभ मोह अभिमाना।
हर्ष शोक ते रहै नियारे नाहि मान अपमाना ॥
आशा मनसा सकल तियागै जगते रहै निरासा।
काम क्रोध जेहि परसै नाहीं तेहि घट ब्रह्मनिवासा ॥

गुरु किरपा जेहि नर पै कीन्हीं तिन यह युक्ति पछानी।
नानक लीन भयो गोविन्दा ज्यो पानी संग पानी ॥

आशा—मांड

राम भज राम भज जनम सिरात है।
कहो कहा बार बार समुझत नहिं क्यों गँवार।
विनसत नहिं लगै बार और सम गात है ॥
सकल भरम डार देहु गोविन्द को नाम लेहु।
अन्त बार संग तेरे यही एक जात है ॥
विषया विष ज्यों विसार, प्रभुको यश हिये धार।
नानक जन कह पुकार अवसर विहात है ॥

हिंडोल

रे मन कौन गति होय है तेरी।
इह जगमें राम नाम सो तो नहीं सुन्यो कान,
विषयन सों अति लुभान मती नाहि फेरी।
मानुष को जनम लीन सुमिरन नहि निमिष कीन,
दारा सुख भयो दीन पगहुँ परी बेरी।

नानक जन कह पुकार सुपने ज्यों जग पसार,
सुमिरत नहिं क्यों मुरारि माया जाकी चेरी ॥

भैरवी

कहा नर अपनो जन्म गँवावै ।
माया मद, विषया-रस राच्यो राम शरन नहि आवै ।
इह संसार सकल है सुपनो देखत कहा लुभावै ॥
जो उपजे सो सकल विनासे रहन न कोऊ पावै ।
मिथ्या तन सांचो करिमान्यों इहि विधि आप बँधावे।
जन नानक सोऊ जग मुक्ता राम भजन चित लावै ॥

दुर्गा—तेवरा

रे मन राम सों कर प्रीत ।
श्रवण गोविन्द गुन सुनो अरु गाव रसना गीत ॥
कर साधु संगति सुमिर माधव होय पतित पुनीत ।
काल व्याल ज्यो परयो डोलै मुख पसारे मीत ॥
आज काल पुनि तोहिं ग्रसि है समझ राखो चीत ।
कहै नानक राम भजले जात अवसर बीत ॥

सिंध भैरवी

मन कर कबहूं हरि-गुण गायो।
विषयासक्त रह्यो निशि वासर कीनो अपनो भायो।
गुरु उपदेश सुन्यो नहिं कानन पर-दारा लपटायो॥
पर निन्दा कारन बहु धावत आगम नहिं समझायो॥
कहा कहौं मैं आपन करनी जेहि विधि जन्म गँवायो।
कह नानक सब अवगुण मोमें राखि लेहु शरनायो॥

मुलतानी—तीन ताल

मन की मन हीं माहिं रही।
ना हरि भजे न तीरथ सेवे चोटी काल गही॥
दारा, मीत, पूत-रथ-सम्पत्ति धन-जन पूर्न मही।
और सकल मिथ्या यह जानो भजना राम सही॥
फिरत फिरत बहुतै जुग हारयो मानस देह लही।
नानक कहत मिलन की बिरियाँ सुमिरत कहा नहीं॥

रेखता

राम सुमर राम सुमर येही तेरो काज है।
माया का संग त्याग. प्रभुजी की सरन लाग।
जगत सुखमान यह मिथ्या सब साज है॥
सुपने ज्यो धन पछानु काहे पर करत मान।
वारू की भीति जैसे वसुधा को राज है।
नानक जन कहत जात बिनसि जैहै तेरो गात।
करि गयो काल तैसे जात आज है॥

राग आसा महला ४

ओंकार सत् गुरु

सो पुरुष निरंजन हरि पुरुष निरंजन
हरि अगमा अगम अपारा।
समि धिआवहि समि धिआवहि तुधुजी
हरि साचे सिरजण हारा॥
सभी जीअ तुमारे जी तूं जीआ का दातारा।
हरि ध्यावहु सन्तहु जी समि दुःख विसारन हारा॥

हरि आपे ठाकुर हरि आपे सेवकजी

किया नानक जन्त विचारा

गुरु नानकजीके दोहे

जागो रे जिन जागना, अब जागनि की वारि।
फेरि कि जागो 'नानका' जब सोवउ पांव पसारि॥
हिरदे जिनके हरि बसे से जन कहिये सूर।
कही न जाई 'नानका' पूरि रहा भरपूर॥
मनकी दुविधा ना मिटै, मुक्ति कहां ते होय।
कोड़ी बदले 'नानका' जन्म चला नर खोय॥

राग बिहाग

सब कछु जीवत को ब्योहार।
माता पिता भाई सुत बांधव अरु पुनि गृह की नार॥
तन ते प्राण होत जब न्यारे टेरत प्रेत पुकार।
आध घरी कोऊ नहिं राखे घर ते देत निकार॥
मृग तृस्ना ज्यों जग रचना यह देखो हृदै विचार।
कहु 'नानक' भज राम नाम नित जाते हो उद्धार॥

जपुजी साहबसे

गुरुमुख नादं गुरुमुख वेदं गुरुमुख रहा समाय ।
गुरु ईश्वर गुरु गोरख ब्रह्म गुरु-पार्वती माय ॥
सब जीवन का दाता सो मोहिं बिसरि न जाय ।
जे युग चारे आरजा होर दसूणी होइ ॥

थापिया न जाइ कीतान होइ ।
आपेआप निरंजन सोइ ॥
जिनि सेविया तिन पाइया मान ।
'नानक' गाउये गुणी निधान ॥

आखहि वेद पाठ पुरान, आखहि परे करै व्याख्यान ।
आखहि ब्रह्मा आखहि इन्द, आखहि गोपी तै गोविन्द ॥
आखहि ईसर आखहि सिद्ध. आखहि केते कीते बुध ।
आखहि दानव आखहि देव, आखहि सुरनर मुनिजन सेव ॥

गावहिं चित्र गुप्त लिखि जानहि लिखि लिखि धरम विचारे
गावहिं ईसर बरमा देवी सोहंति सदा सवारे ॥

गावहिं इन्द्र इन्द्रासन वैठे देवतिया दरि नाले।
गावहिं सिद्ध समाधी अन्दरि गावन साधि विचारे॥
गावहिं जती सती संतोखी गावहिं वीर करारे॥

ताके रूप न कथने जाहि।
न ओहि मरहि न ठागे जाहि॥
जिनके राम वसहि मन माहि।
जतु पहार धीरज सोनार॥
अहरणि मती वेदु हथियार।
घड़िये सब्द सची टकसाल॥
जिन कउ नदरि करम तिनकार।
नानक नदरी नदरि निहाल॥

काफ़ी राग

काहे रे मन चितहि उदमु जा जीव हरी परिआ।
सैल पथरमें जंतु उपजाये ताको रिजकु आगे करि धरिया।
मेरे माधवजी सत संगति मिले सुतरिया।

गुरुप्रसाद परम पद पाइया सूके काठ हरिया ॥
जननी पिता लोक सुत वनिता कोइ न किसी की धरिया।
सिरि सिरि रिजकु संवाहे ठाकुर काहे मन भय करिया॥
ऊड़ि ऊड़ि आवै सौ कोसा तिसु पीछे बचरे छरिया।
तिन कवन खिलावे कौन चुगावे मन मह सुमिरन करिया॥
सब निधान दस अष्ट सिद्धि ठाकुर करतल धरिया।
जन नानक बलि सद बलि जइये तेरा अन्त न पारावरिया॥

भैरवी

कोई मन हरि संग देवे जोर।
चरनन गहो बको सुभ रसना दीजै प्रान अकोर॥
मन तन निर्मल करत कियारो सीचे सुधा संजोर।
आयो सरन दीन दुख भंजन उधरै तुमरी ओर॥
अभयदान सुमिरन स्वामी को नानक बन्धन छोर॥

भक्त सूरदासजीके पद

पीलू

हमारे प्रभु अवगुन चित न धरो।
सम दरसी है नाम तिहारो चाहेतो पार करो
इक नदिया एक नार कहावत मैलोहि नीर भरो।
जब दोऊ मिलि एक बरन भये सुरसरि नाम परो॥
एक लोहा पूजा में राखत एक घर बधिक परो।
पारस गुण अवगुण नहिं चितवे कञ्चन करत खरो॥
यह माया भ्रमजाल कहावे सूर श्याम सगरो।
अब की वेर मोहिं आनि उबारो नहिं प्रण जात टरो॥

आसा

अँखिया हरि दरसन की प्यासी।
देख्यो चाहत कमल नैन को निसि दिन रहत उदासी॥
आये ऊधो फिरि गये आँगन डारि गये गर फाँसी।
केसरि-तिलक मोतिनकी माला वृन्दावन को वासी॥

भक्त सूरदासजी

काहू के मन की कोऊ न जानत लोगन के मन हाँसी।
सूरदास प्रभु तुमरे दरस बिन लैहौं करवट कासी॥

भैरवी

लज्जा मोरी राखो श्याम हरी।
कीनी कठिन दुःशासन मोसे गहि केशन पकरी॥
आगे सभा दुष्ट दुर्योधन चाहत नग्न करी।
पांचो पाराडव सब बल हारे तिन सों कछु न सरी॥
भीषम द्रोण विदुर भये विस्मित तिन सब मौन धरी।
अब नहि मात पिता सुत बांधव एक टेक तुम्हरी॥
बसन प्रवाह किये करुणानिधि सेना हार परी।
सूर श्याम जब सिंह शरण लई कहा सृगाल डरी॥

भैरवी तीनताल

सुनेरी मैंने निर्बल के बल राम।
पिछली साख भरूं सन्तन की आड़ सवारे काम॥
जब लगि गज बल अपनो बरत्यो नेक सरो नहि काम।
निबल होय बल राम पुकारयो आयो आधे नाम॥

द्रुपद सुता निर्बल भइ ता दिन गह लायो निज धाम।
दुःशासन की भुजा थकित भइ वसन रूप भये श्याम॥
अप वल तप वल और बाहु वल चौथा वल है दाम।
सूर किशोर कृपाते सव वल हारे को हरि नाम॥

केदारा—तीन ताल

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
जिन तनु दियो ताहि विसरायो, ऐसो निमक हरामी॥
भरि भरि उदर विषय को धावो जैसे सूकर ग्रामी।
हरि जन छांड़ि हरी विमुखनकी निसि दिन करतगुलामी॥
पापी कौन बड़ो है मोते सव पतितन में नामी।
सूर पतित को ठौर कहाँ है सुनिये श्रीपति स्वामी॥

भैरवी

दो में एकौ तौ न भई।

ना हरि भजे न गृह सुख पाये, वृथा विहाइ गई॥
ठानी हुती और कछु मनमें औरै आनि ठई।
अविगत गति कछु समुझि परति नहिं जो कछु करत दई॥

सुत सनेह तिय सकल कुटुम्ब मिलि निशिदिन होत खई।
पद-नख-चन्द चकोर विमुख मन खात अंगार मई।
विषय विकार दवानल उपजी मोह-बयार बई।
भ्रमत भ्रमत बहुतै दुख पायो अजहूँ न टेव गई॥
कहा होत अबके पछताने होनी सिर बितई।
सूरदास सेये न कृपानिधि जो सुख सकल मई॥

सोहनी तीन ताल

हरि बिन कोऊ काम न आयो।
यह माया झूंठी प्रपंच लगि,
रतन सो जनम गँवायो॥
कंचन कलस विचित्र रोप करि,
रचि पचि भवन बनायो।
ता में ते तेहि छिन ही काढ्यो,
पल भरि रहन न पायो॥
हौं तेरे ही संग जरौंगी, यह-
कहि तिया धृति धन खायो।

द्रुपद सुता निर्वल भइ ता दिन गह लायो निज धाम।
दुःशासन की भुजा थकित भइ वसन रूप भये श्याम॥
अप बल तप बल और बाहु बल चौथा बल है दाम।
सूर किशोर कृपाते सब बल हारे को हरि नाम॥

केदारा—तीन ताल

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
जिन तनु दियो ताहि विसरायो, ऐसो निमक हरामी॥
भरि भरि उदर विषय को धावो जैसे सूकर ग्रामी।
हरि जन छांड़ि हरी विमुखनकी निसि दिन करतगुलामी॥
पापी कौन बड़ो है मोते सब पतितन में नामी।
सूर पतित को ठौर कहाँ है सुनिये श्रीपति स्वामी॥

भैरवी

दो में एको तो न भई।
ना हरि भजे न गृह सुख पाये, वृथा विहाइ गई॥
ठानी हुती और कछु मनमें औरै आनि ठई।
अविगत गति कछु समुझि परति नहिं जो कछु करत दई॥

सुत सनेह तिय सकल कुटुम्ब मिलि निशिदिन होत खई।
पद्-नख-चन्द् चकोर विमुख मन खात अंगार मई।
विषय विकार दवानल उपजी मोह-बयार वई।
भ्रमत भ्रमत बहुतै दुख पायो अजहूं न टेव गई॥
कहा होत अबके पछताने होनी सिर बितई।
सूरदास सेये न कृपानिधि जो सुख सकल मई॥

सोहनी तीन ताल

हरि बिन कोऊ काम न आयो।
यह माया झूंठी प्रपंच लगि,
रतन सो जनम गॅवायो॥
कंचन कलस विचित्र रोप करि,
रचि पचि भवन बनायो।
ता में ते तेहि छिन ही काढ्यो,
पल भरि रहन न पायो॥
हौं तेरे ही संग जरौंगी, यह-
कहि तिया धृति धन खायो।

चलत रही चित चोरि मोरि मुख,
एक न पग पहुँचायो ॥
बोलि बोलि सब बोलि मित्रजन,
लीनों सो जिहि भायो ॥
पर्त्यो काज जब अंत की बिरियां।
तिनहीं आनि बँधायो ॥
आसा करि करि जननी जायो,
कोटिक लाड़ लड़ायो।
तोरि लयो कटिहू को डोरा,
तापर बदन जरायो ॥
पतित—उधारन गनिका—तारन,
सो मैं सठ बिसरायो ॥
लियो न नाम नेकहू धोखे,
सूरदास पछतायो ॥

—

राग आसावरी

अपुनपौ आपुन ही बिसरयो ।
जैसे स्वान काँच-मन्दिरमें भ्रमि भ्रमि भूकि मरयो ॥
हरि सौरभ मृग नाभि बसतु है द्रुम तृण सूंघि मरयो ।
ज्यों सपने में रङ्क भूप भयो तसकर अरि पकरयो ॥
ज्यों केहरि प्रतिबिम्ब देखिकै आपुन कूप परयो ।
ऐसे गज लखि फटिक-सिलामें दसननि जाइ अरयो ॥
मर्कट मूठि छांड़ि नहिं दीनी घर घर द्वार फिरयो ।
सूरदास नलिनी को सुवटा कहि कौने जकरयो ॥

काया हरि के काम न आई ।
भाव-भगति जहँ हरि-यश सुनियो तहाँ जात अलसाई ॥
लोभातुर ह्वै काम मनोरथ तहां सुनत उठि धाई ।
चरन-कमल सुन्दर जहँ हरि को क्योंहूँ न जात नवाई ॥
जब लगि श्याम अङ्ग नहिं परसत आँखे जोग रमाई ।
सूरदास भगवन्त भजन विन विषय परम विष खाई ॥

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहै।
ता दिन तेरे तनु-तरुवर के सबै पात झरि जैहैं॥
घरके कहहि बेग ही काढ़ो भूत भये कोउ खैहैं।
जा प्रीतमसों प्रीति घनेरी सोऊ देखि डरैहै॥
कहँ वह ताल कहां वह शोभा देखत धूरि उड़ैहै।
भाई बन्धू कुटुम्ब कबीला सुमिरि सुमिरि पछितैहैं॥
बिना गुपाल कोऊ नहिं अपने जश-कीरति रहिजैहै।
सो तो सूर दुर्लभ देवनको सत-सङ्गति महँ पैहै॥

काफी—तीन ताल

रे मन मूरख जनम गँवायो।
करि अभिमान विषयरस चाख्यो स्याम-सरन नहिं आयो॥
यह संसार फूल सेमर को सुन्दर देखि भुलायो।
चाखन लाग्यो रूई उड़ि गई हाथ कछू नहिं आयो॥
कहा भयो अब के मन सोचे पहिले नाहिं कमायो।
कहत सूर भगवन्त भजन बिन सिर धुनि धुनि पछतायो॥

खमाच

छांड़ि मन-हरि विमुखन को सङ्ग।
जिनके संग कुमति उपजति है परत भजन में भङ्ग॥
कागहि कहा कपूर चुगाये श्वान न्हवाये गङ्ग।
खर को कहा अरगजा लेपन मरकट भूखन अङ्ग॥
गज को कहा न्हवाये सरिता बहुरि धरै खहि छङ्ग॥
पाहन पतित बान नहिं भेदत रीतो करत निषङ्ग।
सूरदास खल कारी कामरि चढ़त न दूजो रङ्ग॥

खमाज

हम भक्तन के, भक्त हमारे।
सुन अरजुन परतिज्ञा मोरी, यह व्रत टरत न टारे॥
भक्तै काज लाज हिय धरिकै, पाइँ पयादे धाऊँ।
जहँ जहँ भीर परै भक्तन पै, तहँ तहँ जाइ छुड़ाऊँ॥
जो मम भक्त सों वैर करत है, सो निज वैरी मेरो।
देखि विचारि भक्त हित कारन, हाँकत हौं रथ तेरो॥

जीते जीत भक्त अपने की, हारे हारि विचारौं।
सूरदास सुनि भक्त-विरोधी, चक्र-सुदर्शन जारौं॥

जोगिया

जनम सिराने अटके अटके।
ना हरि भजे न तीरथ सेवे रहे बीच ही लटके॥
राज काज सुत पितुकी डोरी विन विवेक फिरौं भटके।
कठिन जो ग्रन्थि परी माया की तोरी जात न झटके॥
कोटिक कला काछि दिखरावे लोभ न छूटत नटके।
सूरदास शोभा क्यों पावे पिय-विहीन, धन मटके॥

भैरवी

तुम्हारी भक्ति हमारे प्रान।
छूटि गये कैसे जन जीवत ज्यों पानी विन प्रान॥
जैसे मगन नाद सुनि सारंग बधत बधिक तनु वान।
ज्यो चितवे शशि ओर चकोरी देखत ही सुखमान॥
जैसे कमल होत परिफूलित देखत दरसन भान।
सूरदास प्रभु हरि गुन मीठे नित प्रति सुनियत कान॥

कल्याण

चरण कमल बन्दौं हरि राई ।

जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै अन्धे को सव कछु दरसाई ॥

वहिरो सुनै मूक पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराई।

सूरदास स्वामी करुणामय वार वार बन्दौं तेहि पाई ॥

भैरवी

जगमें जीवत ही को नातो ।

मन विछुरे तन क्षार होइगो काउ न वात पुछातो ॥

मैं मेरो कवहूँ नहिं कीजै कीजै पंच सोहातो।

विषयासक्त रहत निसिवासर सुख सीरो दुख तातो ॥

सांच झूठ करि माया जोरी आपन रूखो खातो ।

सूरदास कछु थिर नहिं रहई जो आयो सो जातो ॥

भैरवी

जैसे राखहु वैसेहि रहौं ।

जानत दुख-सुख सव जनके तुम मुखसे कहा कहौं ॥

कवहुक भोजन लहौं कृपानिधि कवहुक भूख सहौं।

जीते जीत भक्त अपने की, हारे हारि विचारौं।
सूरदास सुनि भक्त-विरोधी, चक्र-सुदर्शन जारौं॥

जोगिया

जनम सिराने अटके अटके।
ना हरि भजे न तीरथ सेवे रहे बीच ही लटके॥
राज काज सुत पितु की डोरी बिन विवेक फिरौं भटके।
कठिन जो ग्रन्थि परी माया की तोरी जात न झटके॥
कोटिक कला काछि दिखरावे लोभ न छूटत नटके।
सूरदास शोभा क्यों पावे पिय-विहीन, धन मटके॥

भैरवी

तुम्हारी भक्ति हमारे प्रान।
छूटि गये कैसे जन जीवत ज्यों पानी बिन प्रान॥
जैसे मगन नाद सुनि सारंग वधत वधिक तनु बान।
ज्यो चितवे शशि ओर चकोरी देखत ही सुखमान॥
जैसे कमल होत परिफूलित देखत दरसन भान।
सूरदास प्रभु हरि गुन मीठे नित प्रति सुनियत कान॥

कबहुँक चढ़ौं तुरङ्ग महागज कबहूं भार बहौं॥
कमल नयन घनस्याम मनोहर अनुचर भयो रहौं।
'सूरदास' प्रभु भक्त-कृपानिधि तुमरे चरन गहौं॥

खमाज

जो तू राम नाम चित धरतौ।
अबको जन्म आगलो तेरो दोऊ जनम सुधरतौ॥
जमको त्रास सबै मिटि जातो भक्त नाम तेरो परतौ।
तंदुल धिसत संवारि श्यामकौं संत परोसो करतौ॥
होत लाभ सन्तन की संगति मूल गांठ ते टरतौ।
'सूरदास' वैकुण्ठ-पैठमें कोउ न फेंट पकरतौ॥

कालिङ्गड़ा

सबै दिन गये विषय के हेत।
तीनौपन ऐसे ही बीते केस भये सिर सेत॥
आंखिन अन्ध श्रवन नहिं सुनियत थाके चरन समेत।
गंगा जल तजि पियत कूप जल हरि तजि पूजत प्रेत॥

राम नाम बिन क्यों छूटोगे चन्द्र गहे ज्यों केत।
'सूरदास' कछु खर्च न लागत राम नाम मुख लेत॥

सिंध-भैरवी

हरि बिन कौन दरिद्र हरै।
कहत सुदामा सुन सुन्दरि जिय मिलन न हरि बिसरै॥
और मित्र ऐसे समया महँ कत पहिचान करै।
विपति परे कुसलात न बूझै बात नहीं उबरै॥
उठिके मिले तन्दुल हम दीने मोहन बचन फुरै।
'सूरदास' स्वामी की महिमा टारी विधि न टरै॥

आसा राग

जाके रूप वरन वपु नाहीं।
नैन मूंदि चितवो चित माहीं॥
हृदय कमल में ज्योति विराजे।
अनहद नाद निरन्तर वाजे॥
इडा पिंगला सुख मन नारी।
सहज सुता में वसै मुरारी॥

माता पिता न दारा भाई।
जल थल घट घट रह्यो समाई॥
इहि प्रकार भव दुस्तर तरहू।
योग पंथ क्रम क्रम अनुसरहू॥

देस—रूपक

भज मन चरन संकट हरन।
सनक संकर ध्यान लावत निगम असरन सरन।
सेस सारद कहैं नारद सन्त चिन्तत चरन॥
पद पराग प्रताप दुरलभ रमा को हित करन।
परसि गंगा भई पावन तिहूं पुर उद्धरन॥
चित्त चेतन करत अन्तः करन तारन तरन।
गये तरि लै नाम केते सन्त हरिपुर धरन॥
जासु पदरज परसि गौतम नारि गति उद्धरन।
कृष्ण पद मकरन्द पावत और नाहिं सिर परन॥
'सूर' प्रभु चरनार बिन्दु ते मिटै जन्म रु मरन।
जासु महिमा प्रगट कहत न धोइ पग सिर धरन॥

होलीकाफी

जैहै लाज तिहारी नाथ मोरो कहा बिगरैगो।
भरी सभा कौरवन की बैठी बड़े बड़े व्रतधारी।
वल विहीन पांडव सुत ह्वै गये धरनि धरमसुत हारी॥
मो पति पाँच पाँच के तुम पति पति राखो बनवारी।
दुष्ट दुःशासन चीर उतारै तुम बिनु को रखवारी॥
अब तो नाथ रहो पट थोरो डूबत नाव हमारी।
सूर श्याम पीछे पछतैहो जब मोहिं देखिहौ उघारी॥

सोरठ

द्रुपदा जी हरि से टेर कही।
मो पति पाँच पाँच के तुम पति तुम पति कहा जो भई।
पाँचो पीठ चले दे मोको प्रगट पुकार रही॥
भीषम द्रोण करण दुःशासन देखत चीर गही।
तिरिया नगन कबहु नहि होती फाटत क्यों न मही॥
शेष नाग जब थरहर काँप्यो धरनी भार भई।
सूर श्याम प्रभु द्रुपद सुता की गिरधर राखि लई॥

नाम-ध्वनि

सत चित आनन्द राजा राम।
पतित पावन श्री पति राम॥
गति भर्ता प्रभु साखी राम।
सत्यं शिवं सुन्दरम् राम॥
दुःख हर्ता सुख कर्ता राम।
पतित पावन प्रभु तेरो नाम॥

ओ३म् नाम ओ३म् नाम ओ३म् नाम जी।
सत नाम सत नाम सत नाम जी॥
धन्य प्रभू धन्य प्रभू धन्य प्रभू जी।
नमो प्रभू नमो प्रभू नमो प्रभू जी॥

पीलू

सबै दिन एक से नहि जात।
सुमिरन भगति लेहु करि हरि की जौलगि तनकुसलात।
कबहुँक कमला चपल पाय के टेढ़इ टेढ़े जात॥
कबहुंक मग मग धूरि बटोरत भोजन को बिलखात।
बालापन खेलत ही खोयो भगति करत अरसात॥
सूरदास स्वामी के सेवत पैहौ परमपद तात।

केदारा।

है हरि नाम को आधार।
और यह कलिकाल नाहिन रह्यो विधि व्यवहार॥
नारदादि सुकादि संकर कियो यहै बिचार।
सकल श्रुति-दधि मथत पायो इतनोई घृत सार॥
दसहु दिसि गुन कर्म रोक्यो मीन को ज्यों जार।
'सूर' हरि को भजन करतहि मिटि गयो भव भार॥

मीरा बाई के पद

अणाना—तेवरा

हरि तुम हरो जन की भीर।
द्रौपदी की लाज राखी तुरत बढ़ाई चीर॥
भगत कारण रूप नर हरि धरयो आप सरीर।
हिरणयाकुश मारि लीन्हों धरयो नाहिंन धीर॥
बूड़तो गजराज राख्यो कियो बाहर नीर।
दासि मीरा लाल गिरधर चरण-कमलन-सीर॥

काफी-ताल चाचर

हेरी मैं तो दरद दीवानी मेरो दरद न जाणे कोय
घायल की गति घायल जाणे जो कोई घायल होय॥
जौहरी की गति जौहरी जाणे की जिन जौहर होय।
सूली ऊपर सेज हमारी किस विधि मिलना होय॥
दरद की मारी बन बन डोलूं वैद मिला नहिं कोय।
मीरा की प्रभु पीर मिटैगी वैद सँवलिया होय॥

माँड़

घड़ी एक नहिं आवडे तुम दरसन बिन मोय।
तुम हो मेरे प्राणजी कासूं जीवण होय॥
ध्यान न भावै नींद न आवै बिरह सतावै मोय।
घायल सी घूमत फिरूं रे मेरो दरद न जाणे कोय॥
दिवस तो खाय गमाइयो रे रैण गमाई सोय।
प्राण गमाया झूरतां रे नैण गमाया रोय॥
जो मै ऐसी जाणती रे प्रीति कियौ दुख होय।
नगर ढँढोरा पीटती रे प्रीत करो मत कोय॥
पंथ निहारूं डगर वहारूं ऊभी मारग जोय।
मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे तुम मिलियां सुख होय॥

भूप कल्याण

म्हारी सुध ज्यूं जानो ज्यूं लीजो।
पल पल ऊभी पन्थ निहारूं दरसन म्हाने दीजो।
मैं तो हूँ बहु अवगुण वाली औगुण सब हर लीजो॥

मैं तो दासी चरणकमलकी, मिल विछुडन मत कीजो।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर हरि चरणाचित दीजो॥

मालकोस

हरि मेरे जीवन प्रान-अधार।
और आसरो नाहीं तुम विन तीनूं लोक मंझार॥
आप बिना मोहिं कछु न सोहावे निरख्यो सब संसार।
मीरा कहै मैं दास रावरी दीजो मती बिसार॥

तिलक कामोद

राणाजी म्हे तो गोविन्द का गुण गास्यां।
चरणामृत को नेम हमारे नित उठि दरसन जास्यां॥
हरि मन्दिर में निरत करास्यां घूंघरियां घमकास्यां।
राम नाम का झांझ चलास्यां भवसागर तरजास्यां॥
यह संसार बाड़ का कांटा ज्या संगत नहिं जास्यां।
मीरा कहै प्रभु गिरिधर नागर निरखि परखि गुणगास्यां॥

मांड़

राणाजी थे क्याने राखो म्हाँसूं वैर।
थे तो राणाजी म्हाने इसड़ा लागो ज्यूँ वृच्छनमें केर॥
महल अटारी हम सब त्याग्या त्याग्यो थांरो बसनो सहर।
काजल टीकी राणा हम सब त्याग्या भगवीं चादर पहर॥
मीराके प्रभु गिरिधर नागर इमिरित कर दियो जहर।

दुर्गा

मन रे परसि हरि के चरण।
सुभग सीतल कँवल कोमल त्रिविध ज्वाला हरण।
जिन चरण प्रह्लाद परसे इन्द्र पदवी धरण॥
जिन चरण ब्रह्माण्ड भेट्यो नख सिखाँ श्री धरण।
जिन चरण काली नाग नाथ्यो गोप लीला करण॥
जिन चरण गोवरधन धारयो गर्व मघवा हरण।
दासि मीरा लाल गिरिधर अगम तारन तरन॥

तोड़ी

भज मन चरण कँवल अविनासी।
जेतइ दीसे धरण गगनविच तेतइ सब उठ जासी॥
कहा भयो तीरथ व्रत कीन्हे कहा लिये करवट कासी।
इण देही का गरब न करणा माटी में मिल जासी॥
यो संसार चहर की बाजी साँझ पड्यां उठ जासी।
कहा भयो है भगवा पहरयां घर तज भये सन्यासी।
जोगी होय जुगत नहिं जाणी उलट जनम फिर आसी॥
अरज करूं अबला कर जोड़े स्याम तुम्हारी दासी।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर काटो जम की फाँसी॥

भैरवी

मीरा रंग लागो राम हरी, औरन रंग अटक परी।
चूड़ो म्हारे तिलक अरु माला, सील बरत सिंणगारो।
और सिंगार म्हारे दाय न आवे, यो गुरुज्ञान हमारो॥
कोइ निन्दो कोइ बन्दो म्हे तो, गुण गोविन्द का गास्यां।

जिण मारग म्हाँरा साध पधारै, उण मारग म्हें जास्याँ ॥
चोरी न करस्यां जिव न सतास्यां, काई करसी म्हारो कोई
गजसे उतर कर खर नहिं चढ़स्यां, या तो बात न होई ॥

काफी-चाचर

राम नाम रस पीजै, मनुआं राम नाम रस पीजै ।
तज कुसंग सतसंग बैठ नित हरि चरचा सुन लीजै ॥
काम क्रोध मद लोभ मोहकूं वहा चित्त से दीजै ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर ताहि रंग में भीजै ॥

भैरवी

रमइया बिन यो जिवड़ो दुख पावै ।
कहो कुण धीर बँधावै ॥
यो संसार कुबध को भांडो ।
साध संगत नहिं भावै ॥
राम नाम की निन्दा ठाणै ।
करम-ही-करम कुमावै ॥

राम नाम विन मुकति न पावै।
फिर चौरासी जावै॥
साधु संगत में कवहुँ न जावै।
मूरख जनम गँवावै॥
मीरा प्रभु गिरिधर के सरणैं।
जीव परम पद पावै॥

कौशिया

करम गत टारे नाहिं टरै।
सतवादी हरिचन्द्र से राजा, नीच घर नीर भरै।
पांच पांडु अरु कुन्ती द्रौपदी, हाड़ हिमालय गरै॥
जग्य कियो वलि लेण इन्द्रासन, सो पाताल धरै।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, विष से अमृत करै॥

देश-तीन ताल

नहिं ऐसो जनम वारम्वार।
का जानूं कछु पुन्य प्रकटे मानुसा अवतार।
वढ़त छिन छिन घटत पल पल जात लागे न वार॥

नकवेसर हरि नाम की री,

उतर चलोनी परले पार।

ऐसे वर को क्या वरूं,

जो जनमे औ मर जाय॥

वर वरिये एक सांवरो ही,

चुड़लो अमर हो जाय॥

मॉड

पायोजी म्हे तो राम रतन धन पायो।

वस्तु अमोलक दी म्हारे सतगुरु,

किरपा कर अपनायो।

जनम जनम की पूंजी पाई,

जग में सभी खोवायो॥

खरचै नहिं कोई चोर न लेवै,

दिन दिन बढ़त सवायो।

सत की नाव खेवटिया सतगुरु,

भवसागर तर आयो॥

मीरा के प्रभु गिरिधर नागर,

हरख हरख जस गायो ॥

बहार

डारि गयो मन मोहन फांसी।

अम्बा की डाल कोइल इक बोले।

मेरो मरन अरु जग की हाँसी ॥

विरह की मारी मैं वन वन डोलूं ।

प्राण तजूं करवट लूं कासी ॥

मीरा के प्रभु हरि अविनासी।

तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी ॥

पीलू

घुँघरू बांध मीरा नाची रे पग घुँघुरू।

लोग कहै मीरा होगई बावरी सास कहे कुलनासी रे।

जहर का प्याला राणाजीने भेजा पीवत मीरा हांसी रे॥

मैं तो अपने नारायण की होगई आपहि दासी रे।

मीरावे प्रभु गिरिधर नागर वेगि मिला अविनासी रे॥

होली-दीपचन्दी

करुणा सुनो स्याम मोरी।
मैं तो होइ रही चेरी तेरी॥
दरसन कारण भई बावरी विरह विथा तन घेरी।
तेरे कारण जोगण हूंगी दूंगी नगर बिच फेरी।
कुंज बिच हेरीहेरी॥
अंग विभूति गले मृग छाला यों तन भसम करूंगी।
अजहूँ न मिला राम अविनासी वन वन बीच फिरूंगी॥
रोऊं नित टेरी टेरी।
जन मीरा कूं गिरिधर मिलिया दुख मेटन सुख भेरी॥
रूम रूम साता भई उर में मिटि गई फेरा फेरी।
रहू चरननि की चेरी॥

होली-काफी-दीपचन्दी

किण संग खेलूं होली, पिया तज गये अकेली।
माणिक मोती सब हम छोड़े गल में पहनी सेली॥

भोजन भवन भलो नहिं लागै पिय कारन भई गेली।
मुझे दूरी क्यो म्हेली ॥
अब तुम प्रीत और सो जोड़ी हमसे करी क्यो पहिली।
बहु दिन बीते अजहू न आए लग रहो तालावेली।
किन बिलमाये हेली ॥
स्याम विना जिवड़ो मुरझावै जैसे जल बिन बेली।
मीरा कूं प्रभु दरसन दीजै जनम जनम की चेली
दरस बिन खड़ी दुहेली ॥

पीलू

बरजे मैं काहू की नाहि रहूँ।
सुनो री सखी तुम चेतन होइ के मन की बात कहूँ ॥
साध संगति करि हरि सुख लेऊँ जग सूं मैं दूर रहूं।
तन धन मेरो सब ही जानो भल मेरो सीस लहूं ॥
मन मेरो लागो सुमिरन सेती सब की मैं बोल सहूं।
मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर सतगुरु सरन रहूं ॥

गेली=बावली,तालबेली=उतावली,हेली=सखी,दुहेली=दुखी

दादरा-मॉड-आसा

गोविन्द सूं प्रीति करत तबहिं क्यों न हट की।
अब तो बात फैल परी जैसे बीज बट की॥
बीचि की बिचारी नाहिं छायं परी तट की।
अब चूको तो ठौर नहिं जैसे कला नट की॥
जल की घुरी गांठ परी रसना गुन रट की।
अब तो छुड़ाय हारी बहुत बार झट की॥
घर घर में घोल मठोल बानी घट घट की।
सब ही कर सीस धारे लोक लाज पट की॥
मद की हस्ती समान फिरत प्रेम लटकी।
दास मीरा भक्ति बुंद हृदय बीच गटकी॥

भैरवी

राणाजी अब न रहूँगी तोरी हट की।
साध संग मोहिं प्यारा लागे लाज गई घूंघट की॥
पीहर मेड़ता छोड़ा अपना सुरत निरत दोउ चटकी।
सतगुरु मुकर दिखाया घटका नाचूंगी दे दे चुटकी॥

हार सिंगार सभी लो अपना चूड़ी कर की पटकी।
मेरा सुहाग अब मोकू दरसा और न जाने घटकी॥
महल किला राना मोहिं न चहिये सारी रेसम पटकी।
हुई दीवानी मीरा डोले केस लटा सब छिटकी॥

भैरव

मेरो मन रामहिं राम रटै रे।
राम नाम जप लीजै प्राणी. कोटिक पाप कटै रे।
जनम जनम के खत जु पुराने. नामहि लेत फटै रे॥
कनक कटोरे इम्रित भरियो. पीवत कौन नटै रे।
मीरा कहै प्रभु हरि अविनासी, तन मन ताहि पटै रे॥

देश-दादरा

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई।
दूसरा न कोई साधो सकल लोक जोई॥
भाई छोड़या बंधु छोड्या छोड़्या सगा सोई।
साधुन सङ्ग बैठि बैठि लोक-लाज खोई॥
भगत देखि राजी भई जगत देख रोई।

अँसुवन जल सींच सींच प्रेम-बेलि बोई ॥
दधि मथि घृत काढ़ि लियो डार दई छोई।
राणा विष को प्यालो भेजो पीय मगन होई ॥
अब तो बात फैल पड़ी जाणे सब कोई।
मीरा प्रभु लगन लागी होनी होय सो होई॥

सांग

म्हांने चाकर राखो जी.

गिरधारीलाल चाकर राखो जी ॥ टेक ॥
चाकर रहसूं, वाग लगासूं, नित उठ दरसन पासूं।
वृन्दावन की कुंज गलिन में, गोविंद-लीला गासूं ॥१॥
चाकरी में दरसन पाऊँ, सुमिरन पाऊँ खरची।
भाव भगति जागीरी पाऊँ, तीनों बात्यां सरसी ॥२॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे, गल वैजन्ती माला।
वृन्दावन में धेनु चरावे, मोहन मुरलीवाला ॥३॥
ऊंचे ऊंचे महल बनाऊं विच विच राखूं बारी।
साँवरिया के दरसन पाऊँ, पहिर कुसुम्मी सारी ॥४॥

जोगी आया जोग करनकूं, तप करने सन्यासी।
हरी-भजन कूं साधू आये, वृन्दावन के वासी ॥५॥
मीरा के प्रभु गहिर गँभीरा, हृदे रहो जी धीरा।
आधी रात प्रभु दरसन दीन्हा, प्रेम नदी के तीरा ॥६॥

मलार

बदरा रे तू जल भरि ले आयो।
छोटी छोटी बूंदन बरसन लागी कोयल सबद सुनयो।
गाजै बाजै पवन मधुरिया अंबर बदरा छायो॥
सेज सँवारी पिय घर आये हिल मिलि मंगल गायो।
मीराके प्रभु हरि अविनासी भाग भलो जिन पायो॥

पीलू—दादरा

न सावै थारो देसडलो जी रूडो रूडो।
हरि की भगति करै नहिं कोई लोग करै कूडो कूडो॥
पाटी मांग उतारि धरूंगी ना पहिनूं कर चूडो।
मीरा हठीली कहै संतन सो वर पायो आनन्द पूरो॥

सन्त दादूदयालजीके भजन

मॉड़

बटाऊ रे चलना आज कि काल।
समझ न देखै कहा सुख सोवै, रे मन राम संभाल॥
जैसे तरवर विरख बसेरा, पंखी बैठे आय।
ऐसेहि यह सब हाट पसारा आप आप कूं जाइ॥
कोइ नहिं तेरा सजन सनेही, जिनि खोवै मन मूल।
यह संसार देखि मति भूलै सबही सेमल फूल॥
तन मन तेरा, धन नहिं तेरा, कहा रह्यो इहिं लागि।
दादू हरि बिन क्यूं सुख सोवै काहे न देखै जागि॥

बागेश्री

अजहुँ न निकसै प्राण कठोर।
दरसन बिना बहुत दिन बीते सुन्दर प्रीतम मोर॥
चारि पहर चारौं जुग बीते रैन गँवाई भोर।

अवधि गई अजहूँ नहिं आये कतहुं रहे चित चोर॥
कबहूँ नैन निरखि नहिं देखे मारग चितवत चोर।
दादू ऐसे आतुर विरहिणि जैसे चन्द चकोर॥

दोहे—

घीव दूध में रमि रहा, व्यापक सब ही ठौर।
दादू बकता बहुत है, मथि काढ़े ते और॥
सुख का साथी जगत सब, दुखका नाहीं कोय।
दुख का साथी साइयां, दादू सत्गुरु होय॥
दादू देख दयाल को सकल रहा भरपूर।
रोम रोम में रमि रहा तू जिन जानै दूर॥
काया कठिन कमान है खींचे विरला कोइ॥
मारे पांचों मिरगला दादू सूरा सोय॥

कालिङ्गड़ा

जागि रे सब रैण विहाणी,
जाइ जनम अँजुली को पाणी।

घड़ी घड़ी घड़ियाल बजावै,

जे दिन जाइ सो बहुरि न आवै॥

सूरज-चन्द कहै समझाइ,

दिन दिन आयू घटती जाइ।

सरवर-पाणी तरवर छाया,

निस दिन काल गरासै काया॥

हंस बटाऊ प्राण पयाना,

दादू आतम राम न जाना॥

भैरवी

अहो नर नीका है हरि नाम।

दूजा नहीं नांउ बिन नीका कहिले केवल नाम॥

निरमल सदा एक अविनासी अजर अकल रस ऐसा।

दृढ़ गहि राखि मूल मन माहीं निरख देखि निज कैसा॥

यह रस मीठा महा अमीरस, अमर अनूपम पीवै।

राता रहै प्रेम सूं माता, ऐसैं जुगि जुगि जीवै॥

जिन बातन तेरो छूटिक नाहीं सोइ तन तेरो भायो ॥
कामी है विषया संग लाग्यो रोम रोम लपटायो ॥
कुछ एक चेति बिचारी देखो कहा पाप जियलायो ।
दादूदास भजन करि लीजै सुपने जग डहकायो ॥

आसावरी

तुहीं मेरे रसना तूहीं मेरे बैना,
तुहीं मेरे श्रवना तुहीं मेरे नैना ।
तुहीं मेरे आतम कँवल मझारी,
तुहीं मेरे मनसा तुम्हीं परिवारी ॥
तुहीं मेरे मन हो तुहीं मेरे सांसा,
तुहीं मेरे सुरतैं प्राण निवासा ।
तुहीं मेरे नख सिख सकल सरीरा,
तुहीं मेरे जियरे ज्यूँ जल नीरा ॥
तुम्ह बिन मेरे और कोई नाहीं,
तुम्हीं मेरी जीवन दादू माहीं ॥

—

मलूकदासजी की बानी

भैरवी

ना वह रीझै जप तप कीन्हे ना आतम को जारे।
ना वह रीझै धोती टांगे न काया के पखारे॥
दाया करै धरम मन राखै घर में रहै उदासी।
अपना सा दुख सबका जानै ताहि मिलै अविनासी॥
सहै कु सबद वाद हूं त्यागै छांड़ै गरब गुमाना।
यही रीझ मेरे निरंकार की कहत मलूक दिवाना॥

खमाज

दीन बन्धु दीनानाथ मेरी तन हेरिये॥ टेक॥
भाई नाहिं बन्धु नाहिं कुटुम परिवार नाहिं।
ऐसा कोई मित्र नाहि जाके ढिग जाइये॥
सोने की सलैया नाहिं रूपे का रुपैया नाहिं
कौड़ी पैसा गांठ नाहिं जासों कछु ...

खेती नाहिं बारी नाहिं बनिज ब्योपार नाहिं।
ऐसा कोई साहु नाहिं जासों कछु मांगिये॥
कहत मलूकदास छांड़िदे पराई आस।
राम धनी पाइके अब काकी सरन जाइये॥

भैरव—दादरा

राम कहो राम कहो राम कहो बावरे।
अवसर नहिं चूक भोंदू पायो भलो दाव रे॥
जिन तोकों तन दीनों ताको नहिं भजन कीन्हो।
जनम सिरानों जात लोहे कैसो ताव रे॥
रामजी को गाय गाय राम को रिझाव रे।
रामजी के चरण कमल चित्त माहिं लाव रे॥
कहत मलूकदास छोड़ दे तैं झूठी आस।
आनन्द मगन होइके हरि गुन गाव रे॥

कौसिया

गर्व न कीजै बावरे हरि गर्व प्रहारी।
गर्वहिं ते रावन गया पाया दुख भारी॥

जरन खुदी रघुनाथ के मन माहिं सुहानी।
जाके जिय अभिमान है ताकी तोरत छाती॥
एक दया औ दीनता ले रहिये भाई।
चरन गहो जाय साध के रीझै रघुराई॥
यही बड़ा उपदेस है पर द्रोह न करिये।
कह मलूक हरि सुमिरिके भौ सागर तरिये॥

दोहे—

जहां जहां बच्छा फिरै तहां तहां फिरै गाय॥
कहैं मलूक जहँ सन्त जन तहां रमैया जाय॥
अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम।
दास मलूका यों कहै सबके दाता राम॥
'मलुका' सोई वीर है जो जानै पर पीर।
जो पर पीर न जानई सो काफिर बे पीर॥
दया धर्म हिरदे बसै बोलै अमृत बैन।
तेइ ऊँचे जानिये जिनके नीचे नैन॥

सुन्दरदासजी के पद

सोहनी

आदि तुम ही हुते अवर नहीं कोउ जी।
अकह अति अगह अति वर्ण नहिं होउ जी ॥
रूप नहिं रेख नहिं स्वेत नहिं श्याम जी।
तुम सदा एक रस राम जी राम जी ॥ १ ॥

प्रथम ही आपु तैं मूल माया करी।
बहुरि वह कुर्वि करि त्रिगुन ह्वै विस्तरी ॥
पंच हूँ तत्त्व ते रूप अरु नाम जी।
तुम सदा एक रस राम जी राम जी ॥ २ ॥

विधि रजोगुण लिये जगत उतपति करै।
विष्णु सतगुण लिये पालना उर धरै ॥
रुद्र तम गुण लिये संहरै धाम जी।
तुम सदा एक रस राम जी राम जी ॥ ३ ॥

इन्द्र आज्ञा लिये करत नहिं और जी
मेघ वर्षा करै सर्व ही ठौर जी ॥
सूर शशि फिरत है आठ हू धाम जी ।
तुम सदा एक रस राम जी राम जी ॥ ४ ॥
देव अरु दानवा यक्ष ऋषि सर्व जी ।
साधु अरु सिद्ध मुनि होहिं निहगर्व जी ॥
शेष हू सहस मुख भजत निःकाम जी ।
तुम सदा एक रस राम जी राम जी ॥ ५ ॥
जल चरा थल चरा नभ चरा जन्त जी ।
चारि हू खानि के जीव अगिनन्त जी ॥
सर्व उपजै खपै पुरुष अरु वाम जी ।
तुम सदा एक रस राम जी राम जी ॥ ६ ॥
भ्रमत संसार कतहूँ नहीं वोर जी ।
तीन हूं लोक में काल को सोर जी ॥
मनुष तन धर बडे भाग ते पाम जी ।
तुम सदा एक रस राम जी राम जी ॥ ७ ॥

पूरि दशहूँ दिशा सर्व्व में आप जी।
स्तुतिहि को करि सकै पुन्य नहिं पाप जी॥
दास सुन्दर कहै देहु विश्राम जी।
तुम सदा एक रस राम जी राम जी॥ ८॥

भैरव

आदि तूं अन्त तूं मध्य तूं व्योमवत्।
वायु तूं तेज तूं नीर तूं भूमितन्॥
पंच हू तत्व तूं देह तैं ही करे, हे हरे हे हरे हे हरे हे हरे
चारि हू खानि के जीव तैं ही सृजे।
जोनि ही जोनि के द्वार आये वृजे॥
ते सबैं दुःख मैं जे तुम्हे वीसरे, ईश्वरे ईश्वरे ईश्वरे ईश्वरे
जे कछू ऊपजे व्याधि हू आधवे।
दूरि तू ही करै सर्व जेवांधवे॥
वैद्य तूं औषदी सिद्ध तूं साधवे, माधवे माधवे माधवे माधवे
ब्रह्म तूं विष्णु तूं रूद्र तूं वेषजी।
इन्द्र तूं चन्द्र तूं सूर तूं शेष जी॥

धर्म तूं कर्म तूं काल तूॅ देशवे, केशवे केशवे केशवे केशवे

देव मैं दैत्य मैं ऋष्य मैं यत्त मैं।

योग मैं यत्त मैं ध्यान मैं लत्त मैं॥

तीन हूँ लोक मैं एक तूॅ ही भजे, हेअजे हेअजे हेअजे हेअजे

राव मैं रङ्क मैं साह मैं चोर मैं।

कीर मैं काग मैं हंस मै मोर मैं॥

सिंहमैं स्यालमै मच्छमैं कच्छमैं, अत्तये अत्तये अत्तये अत्तये

बुद्धि मै चित्त मैं पिंड मैं प्राण मैं।

श्रोत्र मैं बैन मैं नैन मै घ्राण मै॥

हाथमैं पावमैं सीसमैं सोहने, मोहने मोहने मोहने मोहने

जन्म तैं मृत्यु तैं पुन्य तैं पाप तैं।

हर्ष तै शोक तै शीत तैं ताप तैं॥

रागतैं दोपतैं द्वन्दतैं है परे, सुन्दरे सुन्दरे सुन्दरे सुन्दरे

खमाच

आरती परब्रह्म की कीजै।

और ठौर मेरो मन न पतीजै॥

गगन मंडल में आरति साजी।

शब्द अनाहद झालरि बाजी॥

दीपक ज्ञान भया परकासा।

सेवक ठाढै स्वामी पासा॥

अति उछाह अति मङ्गल चारा॥

अति सुख बिलसै बारम्बारा।

सुन्दर आरति सुन्दर देवा।

सुन्दर दास करै तहां सेवा॥

आसावरी

कोई पीवत राम रस प्यासा रे।

गगन मण्डलमें अमृत सरवै उनमनि कै घर बासा रे॥

सीस उतारि धरै धरती पर करै न तनकी आसा रे।

ऐसा महँगा अमी बिकावै छह रितु बारह मासा रे॥

मोल करै सो छकै दूर ते तौलत छूटै बासा रे।

जो पीवै सो जुग जुग जीवै कबहुँ न होइ बिनासा रे॥

या रस काजि भए नृप जोगी छाड़ै भोग बिलासा रे।

चारि पानी जीव तिनकी और और जाति।
एक एक समान नाहीं करी ऐसी भाँति ॥ १ ॥
देव भूत पिशाच राक्षस मनुष पशु अरु पंषि।
अग्नि जलचर कीट कृमि कुल गनै कौन असंषि ॥ २ ॥
भिन्न भिन्न सुभाव कीये भिन्न भिन्न अहार।
भिन्न भिन्न हि युक्ति राखी भिन्न भिन्न विहार ॥ ३ ॥
भिन्न वानी सकल जानी एक एक न मेल।
कहत सुन्दर माहिं बैठा करै ऐसा खेल ॥ ४ ॥

मेघ मलार

देखौ भाई आज भलौ दिन लागत।
बरिषा रितु कौ आगम आयौ, बैठि मलारहिं रागत ॥टेक॥
राम नामके बादल उनए घोरि घोरि रस पागत।
तन मन मांहि भई शीतलता गये विकार जु दागत ॥१॥
जा कारनि हम फिरत वियोगी निशि दिन उठि २ जागत।
सुन्दर दास दयाल भयेप्रभु सोइ दियौ जोइ मांगत ॥२॥

सवैया

एक कि दोइ? न एक न दोइ,

उहीं कि इहीं न उहीं न इहीं है।

शून्य कि थूल? न शून्य न थूल,

जहीं कि तहीं? न जहीं न तहीं है॥

मूल कि डाल. न मूल न डाल,

वहीं कि महीं न महीं न यहीं है।

जीव कि ब्रह्म? न जीव न ब्रह्म,

तु है कि नहीं कछु? है न नहीं है॥

घनाक्षरी

इन्द्री नहिं जानि सकै अल्पज्ञान इन्द्रिन को,

प्रान हूँ न जानि सकै स्वास आवै जाइ है।

मनहू न जान सकै संकल्प विकल्प होय

बुद्धि हू न जानि सकै सुन्यो सु बताइ है।

चित्त अहंकार पुनि एक नहि जानि सकै,

शब्द हू न जानि सकै अनुमान पाइ है।

सुन्दर कहत ताहि कोऊ नाहिं जानि सकै

दीया करि देखिये सु ऐसी नहिं लाइ है।

सवैया

एक कहूं तो अनेक सो दीसत,

एक अनेक नहीं कछु ऐसो।

आदि कहूं तिहिं अन्तहिं आवत,

आदि न अन्त न मध्य सु कैसो॥

गोप्य कहूँ तो अगोप्य कहा यह,

गोप्य अगोप्य न ऊभो न वैसो।

जोई कहूं सोइ है नहिं सुन्दर,

है तो सही पर जैसे को तैसो॥

मनहर छन्द

तोहि में जगत यह, तूही है जगतमाहिं।

तोमें अरु जगत में, भिन्नता कहां रही॥

भूमिहीते भाजन अनेक, विधि नाम रूप।

भाजन विचारि देखे, उहै एकही मही॥

जलते तरंग फेन, बुन्दुदा अनेक भांति।
सोउ तौ विचारे एक, वहै जल है सही॥
जेते महापुरुष है, सबको सिद्धान्त एक।
सुन्दर अखिल १ ब्रह्म, अन्त वेद ये कहि॥ १॥
जैसे ईख रसकी मिठाई, भांति भांति भई।
फेरि करि गारे, २इक्षु रस ही लहतु है॥
जैसे घृत थीजके, डरासो बांधि जात पुनि।
फेर पिघलेते वह, घृतही रहतु है॥
जैसे पानी जमीके, पषाण३ हू सो देखियत।
सो पषाण३ फेरि पानी, होयके बहत है॥
तैसेही सुन्दर यह, जगत है ब्रह्ममय।
ब्रह्म सो जगतमय, वेद यूं कहतु है॥ २॥
जैसे काठ कोरी तामें, पूतरी वनाय राखी।
जो विचारो देखिये तो, उहै एक दार है॥
जैसे माला सूतहू की. मणिकाहू सूतहि के।

१ सव। २ सांटेके। ३ पथ्थरसो।

सुन्दर कहत ताहि कोऊ नाहिं जानि सकै
दीवा करि देखिये सु ऐसी नहिं लाइ है।

सवैया

एक कहूं तो अनेक सो दीसत,
एक अनेक नहीं कछु ऐसो।
आदि कहूं तिहिं अन्तहिं आवत,
आदि न अन्त न मध्य सु कैसो॥
गोप्य कहूँ तो अगोप्य कहा यह,
गोप्य अगोप्य न ऊभो न वैसो।
जोई कहूं सोइ है नहिं सुन्दर,
है तो सही पर जैसे को तैसो॥

मनहर छन्द

तोहि में जगत यह, तूही है जगतमाहिं।
तोमें अरु जगत में, भिन्नता कहां रही॥
भूमिहीते भाजन अनेक, विधि नाम रूप।
भाजन विचारि देखे, उहै एकही मही॥

जलते तरंग फेन, बुद्बुदा अनेक भांति।
सोउ तौ विचारे एक, वहै जल है सही॥
जेते महापुरुष है, सबको सिद्धान्त एक।
सुन्दर अखिल १ ब्रह्म, अन्त वेद ये कहि॥ १॥
जैसे ईख रसकी मिठाई. भांति भांति भई।
फेरि करि गारे, २इक्षु रस ही लहतु है॥
जैसे घृत थीजके, डरासो बांधि जात पुनि।
फेर पिघलेते वह, घृतही रहतु है॥
जैसे पानी जमीके, पषाण३ हू सो देखियत।
सो पषाण३ फेरि पानी, होयके वहत है॥
तैसेही सुन्दर यह, जगत है ब्रह्ममय।
ब्रह्म सो जगतमय, वेद यू कहतु है॥ २॥
जैसे काठ कोरी तामें. पूतरी बनाय राखी।
जो विचारो देखिये तो. उहै एक दार है॥
जैसे माला सूतहू की. मणिकाहू सूतहि के।

---

१ सब। २ सॉटेके। ३ पथ्थरसो।

सुन्दर कहत ताहि कोऊ नाहिं जानि सकै
दीवा करि देखिये सु ऐसी नहिं लाइ है।

सवैया

एक कहूं तो अनेक सो दीसत,
एक अनेक नहीं कछु ऐसो।
आदि कहूं तिहिं अन्तहिं आवत,
आदि न अन्त न मध्य सु कैसो॥
गोप्य कहूँ तो अगोप्य कहा यह,
गोप्य अगोप्य न ऊभो न वैसो।
जोई कहूं सोइ है नहिं सुन्दर,
है तो सही पर जैसै को तैसो॥

मनहर छन्द

तोहि में जगत यह, तूही है जगतमाहिं।
तोमें अरु जगत में, भिन्नता कहां रही॥
भूमिहीते भाजन अनेक, विधि नाम रूप।
भाजन विचारि देखे, उहै एकही मही॥

जलते तरंग फेन, बुद्बुदा अनेक भांति।
सोउ तौ विचारे एक, वहै जल है सही॥
जेते महापुरुष है. सबको सिद्धान्त एक।
सुन्दर अखिल १ ब्रह्म, अन्त वेद ये कहि॥ १॥
जैसे ईख रसकी मिठाई, भांति भांति भई।
फेरि करि गारे, इक्षु रस ही लहतु है॥
जैसे घृत थीजके. डगासो बांधि जात पुनि।
फेर पिघलेते वह, घृतही रहतु है॥
जैसे पानी जमीके, पषागा३ हू सो देखियत।
सो पषागा३ फेरि पानी. होयके वहत है॥
तैसेही सुन्दर यह. जगत है ब्रह्ममय।
ब्रह्म सो जगतमय. वेद यूं कहतु है॥ २॥
जैसे काठ कोरी तामें पूतरी बनाइ राखी।
जो विचारो देखिये तो. उहै एक दार है॥
जैसे माला सूता की मणिका सूतहि के।

१ सब। २ साँटके। ३ पथ्थरको।

भीतरहू पायो पुनि. सूतही को तार है ॥
जैसे एक समुद्रके, जलही को लौग भयो।
सोउ तौ विचारे पुनि, उहै जल खार है ॥
तैसेही सुन्दर यह, जगत सो ब्रह्ममय।
ब्रह्म सो जगतमय, याही निरधार है ॥ ३ ॥
जैसे एक लोह को, हथ्यार नानाविध किये।
आदि—मध्य—अन्त एक, लोहही प्रमानिये ॥
जैसे एक कंचन१ में, भूषण२ अनेक भये।
आदि—मध्य अंत एक, कंचनही जानिये ॥
जैसे एक सेन३के, स्वारे नर४—हाथी यह।
आदि—अंत—मध्य एक, सेनही बखानिये ॥
तैसे ही सुन्दर यह, जगत सो ब्रह्ममय।
ब्रह्म सो जगतमय. निश्चै करि मानिये ॥ ४ ॥
ब्रह्ममें जगत यह, ऐसी विधि देखियत।
जैसी विधि देखियत, फूलरी महीर में ॥

---

१ सोनेके, २ गहना-जेवर, ३ गोबरके, ४ नररूपहाथी।

जैसी विधि गिलिम, दुलीचेमें अनेक भांति ।
जैसी विधि देखियत, चूनरीहु चीर में ॥
जैसी विधि कांगुरेहु, कोट पर देखियत ।
जैसी विधि देखियत, बुदबुदा नीर में ॥
सुन्दर कहत लोक, हाथ परी देखियत ।
जैसी विधि देखियत, शीतला शरीर में ॥ ५ ॥

ब्रह्म अरु माया जैसे, शिव अरु शक्ति पुनि ।
पुरुष प्रकृति दोउ, कहिके सुनाये हैं ॥
पति अरु पतनी, ईश्वर अरु ईश्वरीहु ।
नारायण लक्ष्मी द्वै, वचन कहाये हैं ॥
जैसे कोई अर्धनारी, नटेश्वर रूप धरें ।
एक बीजहूते दोउ, डाली नाम पाये हैं ॥
तैसेही सुन्दर वस्तु, ज्यूं है ज्यूंहीं एकरस ।
उभय प्रकार होइ आपही दिखाये हैं ॥ ६ ॥

बाज ज्यों विहंगपर सिंह ज्यों मतंगपर।
म्लेच्छ-चतुरंगपर सिवराज पेखिये ॥४॥

गुरु गोविन्दसिंहको वाणी

भगवती—स्तुति (ठक्के देवीसे)

राग आसा-झपताल

नमो उग्रदंती अनंती सवैया।
नमो योग योगेश्वरी योग मैया॥
नमो केहरी - वाहनी शत्रु - हंती।
नमो शारदा ब्रह्म - विद्या पढ़ंती॥
नमो जोति ज्वाला तुमै वेद गावै।
सुरासुर ऋषीश्वर नहीं भेद पावै॥
तुही योगयुक्तण तुही खड़ग धारे।
तुही जै करंती असुर गहि पछारे॥

तुही जल थले पर्वते गिरि निवासी।
तुही सब घटनमें निरालम प्रकासी॥
तुही दुष्ट दाहिन तुही सर्व - पाली।
तुही वृक्ष पुहपा तुही आप माली॥
तुही विश्वभरणी तुही जग प्रकाशी।
तुही अलख बरनी तुही भू अकाशी॥
नमो ज्वालपा देवि दुर्गे भवानी।
तुही लोक नव-खंडमें तुम प्रधानी॥
अटल छत्रधरणी तुही आदि देवं।
सकल मुनजना तोहि निशिदिन स्मरेवं॥
तुही काल आकालकी जोति छाजे।
सदा जै सदा जै सदा जै विराजे॥
यही दास माँगै कृपासिंधु कीजे।
स्वयं ब्रह्मकी भक्ति सर्वत्र दीजे॥
तुही जागती-जोति ज्वाला सरूपी।
तुही जग सकल माहि रमती अनूपी॥

करहु हुक्म अपना सर्व दुष्ट घाऊँ।
तुरक हिंदका सकल झगरा मिटाऊँ॥
अगम सूर वीरा उठहि सिंह योधा।
पकड़ तुरकगन कउ करै वै निरोधा॥
सकल जगत महि खालसा पंथ गाजै।
जगै धर्म हिन्दुन सकल दुंद भाजै॥
जपउं जाप एकै हरेहरि अकालं।
तवै हैं दुनी सब छिनक में निहालं॥
नमो वेद-विद्या नमो यज्ञ-रूपा।
नमो अंजनी पूर्णा भूप भूपा॥
नमो गर्वगंजन श्री योगमाया।
सबै थक रहे मर्म किनहूँ न पाया॥
तुही जगत-जननी अनंती अकालं।
तुही अन्न दैनी सबन को समालं॥
तुही खराड ब्रह्मण्ड भूमं सरूपी।
तुही विष्णु शिव ब्रह्म इन्द्रा अनूपी॥

तुहो देवकी कृष्ण माता कहायं ।
तुही नैणादेवी अखिल जग सहायं ॥
तुही थंभ सिउं निकस नरसिंह होई ।
उदर हरनाखस का नखहु कर परोई ॥
तुही होइ परशुराम जग महि प्रकासी ।
सकल क्षत्रियन को करयो छै विनासी ॥
तुही फिर भई रामचन्द्र अपारा ।
पकड़ दैत लंकेश रावन पछारा ॥
तुही सुरग पाताल वैकुण्ठ धरनी ।
तुही पाप खण्डन उदर जगत भरनी ॥
तुही ब्रह्मणी वेद-पाठण सावित्री ।
तुही धर्मिणी करणकारण पवित्री ॥
तुही गौरजां पार्वती जोग-धरणी ।
तुही लच्छमी अलख रूपी अवरणी ॥
तुही सर्व जग कउ उपावैं छपावैं ।
तुही बहुरि आपे छिनक मों खपावैं ॥

तुही भगन करतार की शक्तिराणी।
तुही हरि सिमरिकर भई योग-त्यागी॥
यही दान मांगउ करहु जे हमारी।
सबै दुष्ट दैतां खपै छिन मझारी॥
तुही अलख दुर्गा जगत् करन हारी।
सकल छोड़कर ओट पकड़ी तिहारी॥
तुही कृष्ण होहि कंस केशी खपायो।
तुही मल्ल चंडूर गहि कर उड़ायो॥
जुगो जुग सकल खेल तुमही रचायो।
तेरे खेल का भेद किन हूं न पायो॥
तुही अष्ट दुर्गे भवानी अकालं।
तुही सकल ब्रह्मंड ऊपर दिआलं॥
तुही हरण भरणी तुही आप माए।
तुही सर्व ठौरन रही आप छाए॥
तुही तीर तरवार काती कटारी।
तुही शंख पदमण गदा चक्रधारी॥

तुही अलख करतारनी शिव सरूपा।
तुही सब घटै देव दुर्ग अनूपा॥
तुही है सबन बीच सब सो निराली।
तुही सब जगत की करहि प्रतिपाली॥
तुही खास भक्तन हरे हरि जपंती।
तुही हर चरण पर अपुन सिर धरंती॥
तुही हरि कृपा सिउ अगम रूप होई।
सबै पच मुए पार पावत न कोई॥
निरंजन सरूपा तुही आदि राणी।
तुही योग-विद्या तुही ब्रह्म-वाणी॥
तुही अम्बिके शक्ति कुद्रति भवानी।
तेरी कुद्रती जोत घट घट समानी॥
नहीं भाख साकउ मैं महिमा तुम्हारी।
लखो नाहिं किनहूं तुमन अंत पारी॥
तुही हरि निरंकार ठाकुर जपंती।
तुही राक्षसन कउ पकड़ कर दहंती॥

हमन वैरीअन कउ पकड़ घात कीजै।
तबै दास गोविन्द का मन पतीजै॥
तुही आस पूरन जगत-गुर भवानी।
छतर-हीन मुगलन करहु वेग फानी॥
सकल हिन्द सिउ तुरक दुष्टां विदारहु।
धरम की ध्वजा कउ जगतमें झुलारहु॥
दुहूं पंथ में कपट-विद्या चलानो।
वहुर तीसरा पन्थ कीजै प्रधानो॥
जो उपजै मरै ताहि सिमरन न कीजै।
अटल पुरुष आकाल का नाम लीजै॥
मढ़ी गोर देवल मसीतां गिरापं।
तुही एक आकाल हरि हरि जपापं॥
अपुन जान कर मोहि लीजै वचाई।
असुर पापीगन मार देवउ उड़ाई॥
सकल जगत कउ सुख बसावहु अनंदा।
तुही तुरक मेटन श्री हरि मुकंदा॥

यही देह आज्ञा तुरक गहि खपाऊं।
गऊ-घातका दोख जग सिउं मिटाऊं॥
छतर तखत मुगलन करहु मार दूरे।
घुरहिं सब जगत महि फतह धर्म तूरे॥
तेरी दर खड़ा दास करता पुकारा।
तुरकन मेट कीजे जगत महि उजारा॥
तभी गीत मंगल फतहिके सुनाऊँ।
तुमन कउ सिमर दुख सगले मिटाऊँ॥
यही आस पूरण करहु तुम हमारी।
मिटै कष्ट गऊअन छुटै खेद भारी॥
फतह सतिगुरूकी सबन सिऊँ बुलाऊं।
सबन कउ शबद वाहि वाहे दृढाऊं॥
करों खालसा पंथ तीसर प्रवेशा।
जगहि सिंह योधा धरहिं नील वेशा॥
सकल राछसन कउ पकड़ वे खपावै।
सबी जगत सिउ धुनि फतहिकी बुलावै॥

तुही जल थले पर्वते गिरि निवासी ।
तुही सब घटनमें निरालम प्रकासी ॥
तुही दुष्ट दाहिन तुही सर्व - पाली ।
तुही वृत्त पुहपा तुही आप माली ॥
तुही विश्वभरणी तुही जग प्रकाशी ।
तुही अलख वरनी तुही भू अकाशी ॥
नमो ज्वालपा देवि दुर्गे भवानी ।
तुही लोक नव-खंडमें हो प्रधानी ॥
अटल छत्रधरणी तुही आदि देवं ।
सकल मुनिजना तोहि निशिदिन स्मरेवं ॥
तुही काल आकालकी जोति छाजे ।
सदा जै सदा जै सदा जै विराजे ॥
यही दास मांगै कृपासिंधु कीजे ।
स्वयं ब्रह्मकी भक्ति सर्वत्र दीजे ॥
तुही जागती-जोति ज्वाला सरूपी ।
तुही जग सकल मह रमंती अनूपी ॥

तुही शारदा वेद गायण सुरसती।
तुही देवि दुर्गे निरंजन परसती॥
यही बीनती खास हमरी सुनीजे।
असुर मारकर रच्छ गऊअन करीजै॥
तुही सिद्धि नौनिद्धि की भरणहारी।
तुही अन्नदात्री सकल जग भिखारी॥
तुही रिषि वशिष्ठे तुही है दुर्वासा।
तुही जमदगनि सग गोतम प्रकासा॥
तुही हरिहरे हरिहरे हरि भवानी।
निरंजन पुरुषपर भई तू कुर्वानी॥
यही देहि वर मोहि सतिगुर धियाऊँ।
असुर जीतकर धर्म नउबत बजाऊ॥
मिटै सब जगत सिउ तुर्कन दुंद शोरा।
बचहि संत सेवक खपहि दुष्ट चोरा॥
सबै सृष्टि परजा सुखी हुइ विराजे।
मिटै दुख संताप आनंद गाजे॥

तुही जल थले पर्वते गिरि निवासी।
तुही सब घटनमें निरालम प्रकासी॥
तुही दुष्ट दाहिन तुही सर्व - पाली।
तुही वृच्छ पुहपा तुही आप माली॥
तुही विश्वभरणी तुही जग प्रकाशी।
तुही अलख बरनी तुही भू अकाशी॥
नमो ज्वालपा देवि दुर्गे भवानी।
तुही लोक नव-खंडमें हो प्रधानी॥
अटल छत्रधरणी तुही आदि देवं।
सकल मुनिजना तोहि निशिदिन समेरवं॥
तुही काल आकालकी जोति छाजे।
सदा जै सदा जै सदा जै विराजे॥
यही दास माँगै कृपासिंधु कीजे।
स्वयं ब्रह्मकी भक्ति सर्वत्र दीजे॥
तुही जागती-जोति ज्वाला सरूपी।
तुही जग सकल मह रमंती अनूपी॥

न छाडउं कहूँ दुष्ट असुरन निशानी।
चले सब जगत् महि धरमकी कहानी॥

श्रीमुखवाक पातसाही १०

(जापुजी साहेब से)

करुणालय हैं, अरि घालय है।
खल खंडन है महि मंडन है॥

जगतेश्वर हैं परमेश्वर है।
कलि कारन है सर्वउबारन हैं॥

धृत धारन है जग कारन हैं।
मन मानिय है जग जानिय हैं॥

सरबं भर है सरबं कर है।
सर्व पासिय है सर्व नासिय है॥

करुणाकर है विश्वम्भर है।
सर्वेश्वर है जगतेश्वर है॥

ब्रहमंडस है खलखण्डस है।
पर ते पर हैं करुणाकर है॥

अजपा जप हैं अथपा थप हैं।
अकृता कृति हैं अमृतामृत हैं॥
अमृतामृत हैं करुणाकृत हैं।
अकृताकृत हैं धरणीधृत हैं॥
अमृतेश्वर है परमेश्वर हैं।
नर नाइक हैं खल घाइक हैं॥
विश्वम्भर है करुणालय हैं।
नृप नाइक हैं सर्व पाइक हैं॥
भव भंजन हैं अरिगंजन हैं।
रिपु तापन हैं, जप जापन हैं॥
अकलंकृत हैं सर्वाकृत हैं।
कर्ता कर हैं हर्ता हरि हैं॥

रामकली।

रे मन ऐसो करि सन्यासा।
बनसे सदन सबै करि समझहु
मनहीं माहिं उदासा॥

जतकी जटा जोगको मंजन

नेम के नखन वढ़ाओ।

ज्ञान गुरू आतम उपदेसहु

नाम विभूति लगाओ॥

अल्प अहार स्वल्प सी निद्रा

दया क्षिमा तन प्रीति।

सील सन्तोष सदा निरवाहिवो

होइवो त्रिगुणातीत॥

काम, क्रोध, हंकार, लोभ, हठ,

मोह न मनसो ल्यावै।

तबही आत्म तत्व को दरसै

परम पुरुष कहँ पावै॥

भैरवी

रे मन इहि विधि जोग कमाओ।

सिङी साच अकपट कंठला

ध्यान विभूति चढ़ाओ॥

ताँती गहु आतम वसि करकी
भिक्षा नाम अधारं।
बाजे परम तार तत हरिको
उपजै राग रसारं॥
उघटै तान तरङ्ग रङ्ग अति
ज्ञान गीत वंधानं।
चकि चकि रहे देव, दानव, मुनि
छकि छकि व्योम विमानं॥
आतम उपदेस भेष संजमको
जाप सु अजपा जापे।
सदा रहे कञ्चन सी काया
काल न कबहूँ व्यापै॥

सोरठ

प्रभु जू तो कहं लाज हमारी।
नील कंठ नर हरि नारायण नील वसन वनवारी॥
परम पुरुष परमेश्वर स्वामी पावन पौनअहारी।

माधव महा जोति मधुमर्दन मान मुकुन्द मुरारी ॥
निर्विकार निर्ज्वर निद्रा-विनु निर्विष नरक निवारी ।
कृपासिन्धु काल त्रै दर्शी, कुकृत प्रनासन कारी ॥
धनुर्पान धृतिमान धराधर निर्विकार असिधारी ।
हौ मति मंद चरण शरणागत कर गहि लेहु उवारी ॥

रामकली

प्रानी परम पुरुष पग लागो ।

सोवत कहा मोह निद्रा में कवहुं सुचित ह्वै जागो ।
औरन कहँ उपदेशत है पशु, तोहि प्रवोध न लागो ।
सिंचत कहा परे विषयन कहँ कवहुं विषय रस त्यागो ॥
केवल कर्म भर्म से चीन्हउ धर्म कर्म अनुरागो ।
संग्रह करो सदा सिमरन को परम पाप तजि भागो ॥
जाते दुःख पाप नहिं भेटै काल जाल ते तागो ।
जो सुख चाहो सदा सबन को तो हरि के रस पागो ॥

दम्भ खण्डन

काह भयो दोऊ लोचन मूँद कै,
बैठ रह्यो वक ध्यान लगायो।
न्हात फिर्यो लिए सात समुद्रन,
लोक गयो परलोक गँवायो॥
वास कियो विषयान सों बैठ के,
ऐसे ही ऐस सुवैस बितायो।
साँच कहों सुन लेहु सबै,
जिन प्रेम कियो तिन ही प्रभु पायो॥१॥
माते मतङ्ग जरे जर सङ्ग,
अनूप उतङ्ग सुरङ्ग सवारे।
कोटि तुरङ्ग कुरङ्ग से कूदत,
पौन के गौन को जात निवारे॥
भारी भुजान के भूप भली विधि,
नावत सीस न जात विचारे।
एते भये तो कहा भये भूपति,

अन्त को नाँगे ही पाइँ पधारे ॥२॥

जीति फिरै सबदेस दिसान को।

बाजत ढोल मृदंग नगारे॥

गुंजत गूड़ गजान के सुन्दर।

हंसत ही हय राज हजारे॥

भूत भविष्य भवान के भूपति।

कौन गनै नहि जात बिचारे॥

श्री पति श्री भगवान भजे बिनु।

अन्त को अन्त के धाम सिधारे ॥३॥

भुजंग प्रयात छन्द

सदा सच्चिदानन्द सर्व प्रणासी,

अनूपे अरूपे समस्तल निवासी।

सदा सिद्धिदा बुद्धिदा वृद्धिकर्ता,

अधो उर्ध अर्ध अघं ओघ हर्ता॥

परम पार परमेश्वरं प्रोक्ष पालं,

सदा सर्वदा सिद्ध दाता दयालं।

निर्गुन ब्रह्म

गोविन्दे मुकुन्दे उदारे अपारे,

हरीयं करीयं नृनामे अकामे।

न सत्रे न मित्रे न भरमं न भित्रे

न कर्म न काये अजन्मं अजाये॥

न चित्रै न मित्रै परे हैं पवित्रै,

पृथीसै अदृसै अदृस्सै अकृस्सै॥

अभंग हैं अनंग हैं अभेख है अलेख है।

अभरम है अकरम है अनादि है जुगादि है॥

अजेय हैं अगेय हैं अभूत है अधूत है।

अनास है उदास है अबन्ध हैं अधंध है॥

निचिन्त है सुनिन्त है अलिक्ख हैं अदिक्ख है।

अलेख है अभेख है अढाह हैं अगाह हैं॥

असम्भ हैं अगम हैं अनील हैं अनादि है।

अनित्त हैं सुनित्त हैं अजात हैं अजादि है॥

विलावल

सो किमि मानस रूप कहाये।
सिद्ध समाधि साध करि हारे क्यों हूं देख न पाये॥
नारद व्यास परासर ध्रुव से ध्यावत ध्यान लगाये।
वेद पुरान हार हठ छाड़यो तद्यपि ध्यान न आये॥
दानव देव पिसाच प्रेत ते नेतइ नेत कहाये।
सूक्ष्म से सूक्ष्म करि चीने वृद्ध न वृद्ध बताये॥
भूमि अकास पताल सबै सजि एक अनेक सदाये।
सो नर काल फांस ते बांचा जो हरि सरन सिधाये॥

मांड राग

गुन गन उदार, महिमा अपार।
अनभव प्रकास, निशिदिन अनास॥
आभा अभंग, अनभूत अंग।
निरभै निकाम, मुनिगन प्रनाम॥

सन्त चरनदासजीके पद

भैरवी

साधो निन्दक मित्र हमारा ।
निन्दक को निकटे ही राखों हो न देउँ नियारा ॥
पाछे निन्दा करि अघ धोवै सुनि मन मिटै विकारा ।
जैसे सोना तापि अगिनिमें निरमल करै सोनारा ॥
घन अहरन कसि हीरा निवटै कीमत लच्छ हजारा ।
ऐसे जाँचक दुष्ट, सन्त कूं करन जगत उजियारा ॥
जोग-जग्य जप पाप कटन हितु करै सकल संसारा ।
बिन करनी मम करम कठिन सब मेटै निन्दक प्यारा ॥
सुखी रहो निन्दक जग माहीं रोग न हो तन सारा ।
हमरी निन्दा करनेवाला उतरै भवनिधि पारा ॥
निन्दकके चरनो की अस्तुति भाखौं वारम्बारा ।
चरनदास कहै सुनियो साधो निन्दक साधक भारा ॥

दोहा

जग माहीं ऐसे रहो, ज्यों अम्बुज सरमाहिं।
रहै नीर के आसरे, पै जल छूवत नाहिं॥

दया नम्रता दीनता, छिमा शील सन्तोष।
इनको लै सुमिरन करे निहचै पावे मोष॥

सोहनी

जिन्है हरिभगति पियारी हो।
मात-पिता सहजै छूटै छूटै सुत नारी हो॥
लोक भोग फीके लागैं सम अस्तुति गारी हो।
हानि लाभ नहि चाहिये सब आसा हारी हो॥
जग सूं मुख मोर रहै करै ध्यान मुरारी हो।
जित मनुआं लागो रहै भइ घट उजियारी हो॥
गुरु सुकदेव बताइया प्रेमी गति भारी हो।
चरन दास चारौ वेद सूं. औरै कछु न्यारी हो॥

आसा राग

प्रभु जू शरण तिहारी आयो।

जो कोइ सरन तिहारी नाहीं भरम भरम दुख पायो।
औरन के मन देवी देवा मेरे मन तुही भायो॥
जब सो सुरति सम्हारी जग में औरन सीस नवायो।
नरपति सुरपति आस तुम्हारी यह सुनि कै मैं धायो॥
तीरथ बरत सकल फल त्याग्यो चरण कमल चित लायो
नारद मुनि अरु शिव ब्रह्मादिक तेरो ध्यान लगायो॥
आदि अनादि जुगादि तेरो जस वेद पुरातन गायो।
अब क्यो न बाहँ गहो हरि मोरी तुम काहे बिसरायो॥
चरनदास कहै करता तू ही गुरु सुकदेव बतायो।

भैरवी

अब की तारि देव बलबीर।

चूक मोसूं परी भारी कुबुधि के संग सीर।
भौसागर की धार तीछन महा गँधिलो नीर॥
कामक्रोध मद लोभ भँवर में चित्त धरत न धीर।

मच्छ जहँ वलवन्त पांचौ थाह गहिर गम्भीर ॥
मोह पवन झकोर दारुन दूर फैलव तीर ।
नाव तो मझधार अरमी हिये वाढ़ो पीर ॥
चरनदास कोई न संगी तुम विना हरि हीर ।

वसन्त

वह वसन्त कोई, विरला पावे वह वसंत ।
जाकी अद्भुत लीला रंग अनन्त ॥
जहँ झिलमिल झिलमिल है अपार ।
जहँ मोती दरसे निराधार ।
जहं फूलन की लागी फुहार ॥
जहँ अनहद वाजे वहु प्रकार ।
जहं ताल जु वाजै विना हाथ ॥
जहँ शंख पखावज एक साथ ॥
जहँ काम क्रोध नहि मोह रैनु ।
जहँ चरणदास ध्वे कामधेनु ॥

सहजोबाई के पद

राग सारङ्ग

हमरे औषध नावँ धनी का।

आधव्याध तन मन की खोवे शुद्ध करै वह नीका॥
अमर भये जिन जिन वह खाई, भव नगरी नहीं आये।
जो पछ करै संभल दृढ़ राखे, सतगुरु बैद बताये॥
सत संगत को भवन बनावे, पड़दा लाज लगावै।
जगत वासना पवन चलत है, सो आवन नहिं पावै॥
शुभ करमनलै टेक टहलुआ, दीपक ज्ञान जलावै।
नित्य अनित्य विचार सार गहु, हो आसार बगावै॥
जीव रूप के रोग भगै यों ब्रह्मरूप हो जावै।
सहजोबाई सुन हुलसावै चरनदास बतलावै॥

बसन्त

मिलि गावो रे साधो यह वसन्त।
जाकी अबिगति लीला अगम पंथ॥

जहँ नावँ पदारथ है इकंग।
नहिं पै ये दूजा और अंग॥
जहँ दरसै साधो एक एक।
नहिं पै ये दूजा कोई भेख॥
जहँ ज्ञान ध्यान को लागो तार।
जहं [illegible] बिराजै ओंकार॥
देखो सब घट व्यापक निराकार।
कोई नहिं पावै वह विचार॥
जहं ब्रह्म अखण्डित अति अनूप।
जाको सुर-मुनि-योगी ध्यावै भूप॥
जो छाय रह्यो है सर्व माहिं।
जहँ कोइ नहिं संतो खाली ठाहिं॥
गुरु चरनदास पूरन औतार।
जिन दान दियो जग ज्ञान द्वार॥
सहजो बाई तेहि नावै सीस।
मेरे भ्रम मेटे बिस्वा बीस॥

दोहे

सहजो गुरु दीपक दियो, नैना भये अनन्त।
आदि अन्त मध एकही, सूझ पड़ै भगवन्त॥

सीस कान मुख नासिका, ऊँचे ऊँचे ठाँव।
सहजो नीचे कारने सब कोउ पूजै पाँव॥

मैं अखण्ड व्यापक सकल सहज रहा भरपूर।
ज्ञानी पावे निकट ही मूरख जानै दूर॥

जोगी पावैं जोग सूं ज्ञानी लहै विचार।
सहजो पावैं भक्ति सूं जाके प्रेम अधार॥

सील छिमा सन्तोष गहि पांचो इन्द्री जीत।
राम नाम ले सहजिया मुक्ति होन की रीति॥

गुजराती भजन

भैरवी

मंगल मन्दिर खोलो, दयामय ! मंगल मन्दिर खोलो ।
जीवन वन अति वेगे वटाव्युं, द्वार उभो शिशु भोलो ॥
तिमिर गयुं ने ज्योति प्रकाश्यो, शिशु ने उरमां ल्योल्यो ।
नाम मधुर तम रट्यो निरंतर, शिशु सह प्रेमे बोलो ॥
दिव्य तृषातुर आव्यो बालक. प्रेम अमीरस ढोलो ।

खमाच धुमाली

वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीड़ पराई जाणे रे ।
पर दुःखे उपकार करे तोये मन अभिमान न आणे रे ॥
सकल लोक मां सहुने वन्दे निन्दा न करे केनी रे ।
वाच काछ मन निश्चल राखे धन धन जननी तेनी रे ॥
समदृष्टी ने तृष्णा त्यागी, परस्त्री जेने मात रे ।
जिह्वा थकी असत्य न बोले परधन नव झाले हाथ रे ॥

मोह माया व्यापै नहीं जेने दृढ़ वैराग जेना मनमाँ रे।
राम नामशुं ताली लागी सकल तीरथ तेना तनमाँ रे॥
वण लोभी ने कपट रहित छे काम क्रोध निर्वार्या रे।
भणे नर सैंयो तेनुं दरशन करतां कुल एको तेर तार्या रे॥

आसामांड

अखिल ब्रह्माण्ड मां एक तुं श्रीहरि।
जूजवे रूपे अनन्त भासे॥
देहमां देव तुं तेज मां तत्त्व तुं।
शुन्य मां शब्द थई वेद वासे॥ १॥
पवन तुं पाणि तुं भूमि तूं भूधरा।
वृक्ष थई फूली रह्यो आकाशे॥
विविध रचना करी अनेक रस लावी ने।
शिव थकी जीव थयो एज आशे॥ २॥
वेद तो एम वदे श्रुति-स्मृति साख दे।
कनक कुण्डल विषे भेद न्होये॥
घाट घड्या पछी नाम रूप जूजवां।

अन्ते तो हेम नुं हेम होये ॥
वृक्ष मां बीज तूँ बीज मां वृक्ष तुं ।
जोउं पटंतरो ए जपा से ॥
भणे नरसैंयो ए मन तणी शोधना ।
प्रीति करूं प्रेमथी प्रगट थाशे ॥

वागेश्री—ताल धमार तेवरा

दीनानाथ दयाल नटवर, हाथ मारो मूकशो मां ।
हाथ मारो मूकशो मां हाथ मारो मूकशो मां ॥
आ महा भवसागरे, भगवान हुं भूलो पड्यो छुं ।
चौद लोक निवास चपलाकान्त ! आतक चूकशो मां ॥
ओथ ईश्वर आपनी साधन विषे समजुं नहिं हुं ।
प्राण पालक ! पोत जोई शंख आखर फूकशो मां ॥
मात तात सगां सहोदर जे कहुं ते आप मारे ।
हेतरूपामृतना सरोवर ! दान सारू सूकशो मां ॥
शरण केशव लाल नुं छे चरण हे हरि राम तारूं ।
अखिल नायक ! आ समय खोटे मशे पण खूटशो मां ॥

काफी–ताल दीपचन्दी

कोई सहाय न थी, विना हरि कोइ सहाय नथी।
बंधा मां तुं वालक ममता मां मन थी॥
सूतो केम धरी ने धीरज धाम धरा धन थी।
भज भूधर ने भाल करीने शमदम साधन थी॥
अवर तणी सेवा शा माटे, अरर! करे अनथी।
काल कराल तणो भय भारे जो मनमाहिं मथी॥
करशे ते थई शकशे केशव, आ उत्तम तन थी।

छाया खमाच–तीन ताल

मारी नाड़ तमारे हाथे हरि संभाल जो रे।
मुजने पोतानो जाणीने प्रभु पद पाल जो रे॥
पथ्या पथ्य नथी समजातुं, दुःख सदैव रहे उभरातुं।
मने हशे शुं थातुं नाथ निहालजो रे॥
अनादि आप वैद्य छो साचा कोईउपाउ विपेनहिकाचा।
दिवस रह्या छे टांचा वेला वालजो रे॥

विश्वेश्वरशुं हजी विसारो वाजीहाथ छतांकां हारो?
महा मुंझारो मारो नटवर टाल जो रे।
केशव हरि मारूं शुं थाशे. घाण वल्योशुं गढ़ घेराशे ?
लाज तमारी जाशे भूधर भाल जो रे।

मराठी पद

पवित्र ते कुल पावन तो देश।
जेथे हरिचे दास जन्म घेती॥
कर्म धर्म त्याचे जाला नारायण।
त्याचेनि पावन तिन्हीं लोक॥
वर्ण अभिमाने कोण जाले पावन।
ऐसे द्या सांगून मज पाशीं॥
अंत्यजादि योनि तरल्या हरि भजने।
तयांचीं पुराणीं भाट झालीं॥
कान्हीं पात्र खोदु पिजारी तो दादु।
भजनीं अभेदु हरिचे पायीं।

चोखामेळा बंका जातीचा महार ।
त्यासी सर्वेश्वर ऐक्य करी ॥
नाम याची जनी कोण तिचा भाव ।
जेवी पंढरी राव तिये सवे ॥
मैराल जनक कोण कुल त्याचें ।
महिमा न तयाचे काय सांगों ॥
याता याति धर्म नाहीं विष्णुदासा ।
निर्णय हा ऐसा वेद शास्त्रीं ॥
तुका म्हणे तुम्ही विचारावे ग्रन्थ ।
तारिले पतित ने णों किती ॥

खमाच तीन ताल

स्मरतां नित्य हरी, मगती माया काय करी ।
श्रवणे मनने अद्वय बचने पलतो काल दुरी ॥
करुणा कर वरदायक हरि जो ठेवित हात शिरीं ।
तोचि निरन्तर उद्धव चरणीं अमृत पान करी ॥

कविवर रवीन्द्रजीके बंगाली-पद

अडाणा

तुमि बन्धु तुमि नाथ, निशि दिन तुमि आमार।
तुमि सुख तुमि शांति, तुमि हे अमृत पाथार॥
तुमि तो आनन्द लोक. जुड़ाओ प्राण नाशो शोक।
ताप हरण तोमार चरन, असीम शरन दीन जनार॥

भैरवी

बहे निरन्तर अनन्त आनन्द धारा,
वाजे असीम नभ माझे अनादि रव।
जागे अगराय रविचन्द्र तारा॥
एकक अखण्ड ब्रह्माण्ड राज्ये।
परम एक सेई राज राजेन्द्र राजे॥
विस्मित निमेष हत विश्व चरणी विनत।
लक्ष शत भक्त चित्त वाक्य हारा॥

ईश्वर-ध्यान

मन के आमार काया के।

अमी एके बारे मिलिये दिते चाइ ए कालो छाया के।

ए आगुने ज्वलिये दिते, ए सागरे तलिये दिते।

ए चरणे गलिये दिते, दलिये दिते माया के॥

मनके आमार काया के।

ये खाने पाइ से थाइ एके आसन जुड़े बसते देखे।

लाजे मरि लागो हरि एइ सुनिविड़ छाया के॥

मन के आमार काया के।

तुमि आमार अनुभावे, को थायो नाहि बाधा पावे।

पूर्ण एका देवे देखा सरिये दिये माया के॥

मन के आमार काया के।

आसावरी-द्रुत एक ताल

अन्तर मम विकसित करो अन्तर तर हे।

निर्मल करो उज्वल करो सुन्दर करो हे॥

जागृत करो उद्यत करो निर्भर करो हे।

मंगल करो निरलस निःसंशय करो हे ॥
युक्त करो हे सबार संगे मुक्त करो हे बंध ।
संचार करो सकल कर्म्म शांत तोमार छंद ॥
चरण पद्म मम चित निष्पन्दित करो हे ।
नन्दित करो नन्दित करो नन्दित करो हे ॥

जैन पद संग्रह

बहार

घड़ि घड़ि पल पल छिन छिन निशदिन
प्रभुजी का सुमरन करले रे ।
प्रभु सुमिरे ते पाप कटत है
जनम मरन दुख हरले रे ॥
मन वचकाय लगाय चरन चित
ज्ञान हिये विच धर ले रे ।

"दौलतराम" धर्म नौका चढ़ि
भवसागर तैं तरले रे॥

काफी-चाचर ताल

मन हंस ! हमारी लै शिक्षा हितकारी ॥ टेक ॥
श्री भगवान चरन पिंजरे वसि तजि विषयनिकी यारी,
कुमति कागली सौं मति राचो ना वह जात तिहारी।
कीजै प्रीत सुमति हंसी सौं बुध-हंसन की प्यारी,
काहे को सेवत भव झीलर दुख जल पूरित खारी।
निज बल पंख पसारि उड़ो किन, हो शिव सरवर चारी
गुरु के वचन विमल मोती चुन क्यो निज बान बिसारी।
ह्वै है सुखी सीख सुधि राखैं 'भूधर" भूलै ख्वारी॥

पीलू

हम न किसीके कोइ न हमारा, झूठाहै जगका व्यवहार।
तन सम्बन्धी सब परिवारा, सो तन हमने जाना न्यारा।
पुन्य उदय सुखका बढवारा, पाप उदय दुख होत अपारा।

पाप पुन्य दोऊ संसारा, मैं सब देखन हारा।
मैंतिहुँजग तिहुं काल अकेला, पर संयोग भया बहुमेला॥
तिथि पूरी करि खिर २ जाहीं, मेरे हर्ष शोक कछु नाहीं।
राग भावतैं सज्जन मानै, दोष भाव तैं दुर्जन जानै॥
राग दोष दोऊ ममनाहीं, 'द्यानत' मैं चेतन पद माहीं॥

महामना पं० मदनमोहन मालवीय कृत धर्मोपदेशसे —

सनातन धर्मी, आर्य समाजी, ब्रह्म समाजी, सिक्ख, जैन और बुद्ध आदि सब हिन्दुओ को चाहिये कि अपने अपने विशेष धर्म का पालन करते हुये एक दूसरे के साथ प्रेम और आदरका व्यवहार करे—

प्रार्थना

सब देवन के देव प्रभु सब जग के आधार।
दृढ राखौ मोहि धर्म में विनवौ वारम्वार॥

चन्दा सूरज तुम रचे रचे सकल संसार।
दृढ राखौ मोहिं सत्य में विनवौं बारम्बार॥
घट घट तुम प्रभु एक अज अविनाशी अविकार।
अभय दान मोहिं दीजिये विनवौं बारम्बार॥
मेरे मन मन्दिर वसौ करौ ताहि उजियार।
ज्ञान भक्ति प्रभु दीजिये विनवौं बारम्बार।
सत चित आनंद घन प्रभू सर्व शक्ति आधार॥
धनवल जनवल धर्मवल दीजै सुख संसार॥
पतित उधारन दुख हरन दीन बन्धु करतार।
हरहु अशुभ शुभ दृढ़ करहु विनवौं बारम्बार॥
जिमि राखे प्रहलाद को लै नृसिंह अवतार।
तिमि राखौ अशरण शरण विनवौं बारम्बार॥
पाप दीनता दरिद्रता और दासता पाप।
प्रभु दीजे स्वाधीनता मिटै सकल संताप॥
नहिं लालच बस लोभ बस नाहीं डर बस नाथ।
तजौ धरम बर दीजिये रहिय सदा मम साथ॥

जाके मन प्रभु तुम बसौं सो डर कासों खाय।
सिर जावै तो जाय प्रभु किन्तु धरम नहि जाय॥
उठौं धर्म के काम में उठौं देश के काज।
दीनबन्धु तव नाम लै नाथ राखियो लाज॥

दोहा

थावर जङ्गम जीव में घट घट रमता राम।
सत चित आनन्द घन प्रभू सब विधिपूरण काम॥
अंश उसी के जीव हो करो उसी से नेह।
सदा रहो दृढ़ धर्म चिर बसो निरामय देह॥

ईश्वर का ध्यान

राम ब्रह्म चिन्मय अविनासी।
सर्व रहित सब उरपुर वासी॥
आदि अन्त कोउ जासु न पावा।
मति अनुमान निगम अस गावा॥
बिनु पद चलै सुनै बिनु काना।
कर बिनु कर्म करै विधि नाना॥

आनन रहित सकल रस भोगी।
बिनु वाणी वक्ता बड़ योगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा।
ग्रहै घ्राण बिनु बास अशेखा॥
अस सब भांति अलौकिक करणी।
महिमा तासु जाइ किमि बरणी॥

आर्य समाज के पद

भूप-कल्यान

योधा सोई जो लडे धर्म के हेत।
शूरा रण में जाय के पीठ कबहुँ नहि देत॥
जान जाय पर धर्म न जाये स्वर्ग पठाने खेत॥योधा०॥
धर्मपर जिन सीस दियो है, पावे हरका भेद।
राय हकीकत,वीर वैरागी, तरगये सागरसेत॥योधा०॥
धर्म छोड जो नावे माथा, होये भूत-प्रेत॥

बागेश्री

ओ३म् अनेक बार बोल प्रेम के प्रयोगी।
है यही अनादि नाद, निर्विकल्प निर्विवाद,
भूलते न पूज्यपाद वीत राग योगी॥
वेद को प्रमाण मान अर्थ योजना बखान,
गा रहे गुणी सुजान, साधु स्वर्ग योगी॥
ध्यान में धरे विरक्त भाव से भजे सुभक्त,
त्यागते अघी अशक्त, पांच पाप रोगी॥
शंकरादि नित्य नाम, जो जपै विसार काम,
तो बने विवेक धाम, मुक्ति क्यों न होगी॥

ईश-निहोरा

वाक् शक्ति आपने दी जो हमें करि अति कृपा।
सो हमारी हे दयामय शुद्ध वाणी हो सदा॥ १॥
प्राण के दाता प्रभू तुम प्राण के भी प्राण हो।
आपके सुमिरन पुहुपसे यह सुगन्धित प्राण हो॥ २॥
हे प्रभू इन नेत्रोंकी ज्योति को दीजे प्रकाश।

आपके दर्शन करें अरु होय इनकी पूर्ण आश ॥ ३ ॥
सर्वदा सुनते रहे यह ओ३म् के गुण गान कान ।
शक्ति ऐसी कीजिये हे नाथ अब इनको प्रदान ॥ ४ ॥
धर्म-चर्चा श्रवण करने में सदा हम कान दें ।
और सुनने को कुशब्दोंके कदापि न ध्यान दें ॥ ५ ॥
रोग से नाभी हमारी हे दयामय दूर हो ।
सुःख अरु नीरोगता से यह सदा भरपूर हो ॥ ६ ॥
आपही का इस हृदयमें प्रभु निरन्तर ध्यान हो ।
कीजिये ऐसी कृपा जो प्राप्त आत्मिक ज्ञान हो ॥ ७ ॥
आपके उपकार का यह कंठ गाये नित्य गान ।
शुद्ध निष्कंटक रहे स्वर सर्वप्रिय कोकिलसमान ॥ ८ ॥
नाथ इस मस्तिष्कमें वह बुद्धि हमको दीजिये ।
ज्ञान जिससे आपका हो सो कृपाकर कीजिये ॥ ६ ॥
आप हो बलदा, भुजाओंको अतुल बलदान दो ।
यज्ञ दानादिक सदा ये कर सकें बलवान हों ॥ १० ॥
करतलो में सर्वदा प्रभु-स्मरण की माला रहे ।

मन तुम्हारी ही कृपा को मानने वाला रहे ॥ ११ ॥
दी हमें दश इन्द्रियां यह आपका उपकार है।
आपको करता नमस्ते मित्र वारम्वार है ॥ १२ ॥

(तर्ज—सिर जावे तो जाये, मेरा वैदिक धर्म न जावे)

वैदिक नाद बजाओ, ऐ आर्य वीर गण आओ ॥
समय नहीं सोनेका प्यारो, करवटले अव आंख उघारो।
बिगड़ी वात वनाओ ॥ ऐ आर्य० ॥
प्रवल शत्रुओं ने है ठाना छल प्रपंच से हमें मिटाना।
सावधान हो जाओ ॥ ऐ आर्य० ॥
ललना लाल लुटेरे लूटे, सिखा सूत्र है मन्दिर टूटे।
गौरव मान वचाओ ॥ ऐ आर्य० ॥
देश काल की ओर निहारो, करो संगठन वैर विसारो।
भ्रातृ भाव दरसावो ॥ ऐ आर्य ॥
विधवा जार जार रोती है, कितनी हाय धर्म खोती है।
धीरज उन्हे वंधाओ ॥ ऐ आर्य ॥

हुए करोड़ों अपने भाई, गौ भक्षक मुसलमान ईसाई।
फिरसे आर्य बनाओ ॥ ऐ आर्य० ॥
इधर उधर जो भटके उनको, कबरोंमें सर पटके उनको।
सत् मारग पर लाओ ॥ ऐ आर्य० ॥
बनों भीम अर्जुनसे बलमें, धूम मचा दो युद्धस्थलमें।
शूर वीर कहलाओ ॥ ऐ आर्य० ॥
गुरु गोविन्द औ वैरागी सम, श्रद्धानंद आत्मत्यागी सम।
धर्मवीर पद पाओ ॥ ऐ आर्य० ॥
'प्रकाश' निज कर्तव्य कर्मपर, सत्य सनातन वेद धर्मपर
निर्भय शीश कटाओ ॥ ऐ आर्य० ॥

ध्रुपद—भैरव चार ताल

निरंजन निराकार परब्रह्म परमेश्वर,
एक ही अनेक होय व्यापो विश्वम्भर।
अलख जोति अविनाशी जोतिरूप जग तारण,
जगन्नाथ जगतपति जगजीवन जगधर ॥
वाहिमें सब जीव-जन्तु सुरनरमुनि गुणिज्ञानी,

ब्रह्मा प्रगटायो औ सतरूपा मन्वन्तर।
कहे वैजू वही ब्रह्म वही है विराट रूप,
आप अवतार भये चौबीस वपुधर॥

ध्रुपद् कल्याण

जयगोविन्द, जयगोविन्द. पतित पावन, अघ नाशन,
शरणागत, दीनन-प्रतिपालक, हरि परमानन्द॥ जय०॥
तारक भय हारक उद्धारक है तेरो नाम,
सुमिरत सब दूर होत त्रिविध ताप दुख द्वन्द॥जय०॥
हो अनन्त निर्विकार सकल जगत के अधार।
अलख अमर ओंकार अगिनि पवन सूर्य चन्द्र॥जय०॥
कुँवर श्याम अतिदयाल काटो मम मोह जाल,
दूर करो, दूर करो. दूर करो, जगत फन्द॥जय०॥

अडाणा-झूमरा

नैया मेरी तनकसी बोझी पाथर भार।
चहुं दिसि अति भौंर उठत केवट है मतवार॥
केवट है मतवार नाव मझधारहिं आनी।

आंधी उठी प्रचण्ड नेहुँ पर बरसै पानी ॥
कह गिरिधर कविराय नाथहो तुमहिं खेवैया।
उठे दयाको डाँड़ घाट पर आवै नैया ॥

भैरवी

हे जग-त्राता, विश्व विधाता,
हे सुख शान्ति निकेतन हे।
प्रेम के सिन्धो दीनके बन्धो,
दुःख दरिद्र विनाशन हे ॥
नित्य अखण्ड अनन्त अनादी,
पूरण ब्रह्म सनातन हे ॥
जग-आश्रय, जगपति, जगवन्दन,
अनुपम, अलख, निरञ्जन हे ॥
प्राण सखा त्रिभुवन प्रतिपालक,
जीवन के अवलम्बन हे ॥

भीम पलासी

पितु मातु सहायक स्वामि सखा,
तुम ही इक नाथ हमारे हो।
जिनके कछु और अधार नहीं,
तिनके तुम ही रखवारे हो।
प्रतिपाल करो सगरे जग को,
अतिशय करुणा उर धारे हो।
भुलिहै हम हीं तुम को तुम तो,
हमरी सुधि नाहि विसारे हो।
उपकारन को कछु अन्त नहीं,
छिन ही छिन जो विस्तारे हो।
महाराज महा महिमा तुमरी,
समुझै विरले बुधवारे हो।
शुभ शान्तिनिकेतन प्रेमनिधे,
मनमान्दिर के उजियारे हो।
यहि जीवन के तुम जीवन हो,

इन प्राणन के तुम प्यारे हो।
तुमसो प्रभु पाय 'प्रताप' हरी,
केहि के अब और सहारे हो।

राग विहारी

जय जगदीश हरे।
भक्त जनोंके संकट छिन में दूर करे॥
जो ध्यावै फल पावे दुख विनशै मनका।
सुख सम्पति गृह आवे कष्ट मिटै तन का॥
मात पिता तुम मेरे शरण गहूँ किसकी।
तुम विन और न दूजा आश करूँ जिसकी॥
तुम पूरण परमात्मा तुम अन्तरयामी।
पारब्रह्म परमेश्वर तुम सबके स्वामी॥
तुम कृपा करुणा के सागर तुम पालन करता।
मैं मूरख खल कामी कृपा करो भरता॥
तुम हो एक अगोचर सबके प्राण पती।
किस विधि मिलूँ गुसाईं तुम को मैं कुमती॥

दीन बन्धू दुख हरता ठाकुर तुम मेरे ।
अपने हाथ उठावो द्वार परया तेरे ॥
विषय विकार मिटाओ पाप हरो देवा ।
श्रद्धा-भक्ति बढ़ावो सन्तन की सेवा ॥

द्रौपदी-पुकार-लावनी

कालिङ्गड़ा-तीनताल

बिन काज आज महराज लाज गई मेरी ।
दुख हरो द्वारिका नाथ शरन मैं तेरी ॥
दुःशासन वंश कुठार महा दुखदाई ।
धर पकरत मेरो चीर लाज नहिं आई ॥
अब भयो धर्मको नाश पाप रह्यो छाई ।
लखि अधम सभाकी ओर नारि बिलखाई ॥
गुरुजी दुर्योधन दशों खड़े खल घेरी ॥ दुख० ॥
तुम दीननकी सुधि लेत देवकीनन्दन ।

महिमा अनन्त भगवन्त भक्त-भय-भंजन ॥
तुम किया सिया दुख दूर शंभु धनु खंडन ।
हे तारण मदन गोपाल मुनिन मन रंजन ॥
करुणा निधान भगवान करी क्यों देरी ॥ दुख०॥
बैठे जहां राजसमाज नीति सब खोई ।
नहि कहत धर्मकी बात सभामें कोई ।
पांचो पति बैठे मौन कौन गति होई ।
लै नन्दनन्दन को नाम द्रौपदी रोई ॥
करि करि विलाप संताप सभामें टेरी ॥ दुख०॥
तुम सुनि गजेन्द्र की टेर विश्व अघनाशी ।
ग्रह मारि छुड़ाई बंदि काटि पग फांसी ॥
मैं जपों तुम्हारो नाम द्वारकावासी ।
अब काहे राज समाज करावत हाँसी ॥
अब कृपा करौ यदुनाथ जानि चित चेरी ॥ दुख०॥
तुम पति राखी प्रह्लाद दीन दुख टारो ।
भये खम्भ फारि नरसिंह असुर संहारो ॥

व्रज खेलत केशी आदि बकासुर मारो ।
मथुरा मुष्टिक चाणूर कंस मद झारो ॥
तुम मात पिताकी आनि कटाई बेरी ॥ दुख०॥
ले भक्तन हित अवतार कन्हाई तुमने ।
यमलार्जुन की जड़ योनि छुड़ाई तुमने ॥
जल बरसत प्रभुता अगम दिखाई तुमने ।
नखपरगिरिधर व्रज लियो उबारी तुमने ॥
प्रभु अब बिलम्ब क्यों करी हमारी बेरी ॥ दुख०॥
सुन दीनबन्धु भगवान भक्त हितकारी ।
हरि भये चीर में प्रगट हरो दुख भारी ॥
खैंचत हारो मतिमन्द वीर बलकारी ।
रखि लई दीनकी लाज आप बनवारी ॥
बरसत हरषत सुर सुमन बजावत भेरी ॥ दुख०॥
क्या करो द्वारिकानाथ मनोहर माया ।
अम्बर का लगा पहाड अन्त नहीं पाया ॥
तिहुँ लोक चहुँदिशि भुवन चीर दरशाया।

बंदित गणेश परसाद कृष्ण गुण गाया ॥
दीनन की दीनानाथ त्रिपति निरवैरी ॥ दुख०॥

कजली

काली छाय रही अँधियारी घरमें आन घुसे हैं चोर।
बरसै मेह दामिनी दमकै चढ़ी घटा घन घोर ॥
बरबस हाय ! हमारी सम्पति नासत सबै बटोर ॥
बोल न सकत बाँधि राख्यो मोहिं चलत न एकौ जोर।
पपिहा बोल जगावत जो कहुँ डारत पंख मरोर ॥
हाय ! करौंका घरके प्रानी सोवत तीस करोर।
'माधव' उठ देखहु घर आपन होन लगो अब भोर ॥

भैरवी

हे प्रभु विपत विनासन हार,
छनमें नाश करत जग तूही, तूही सिरजन हार।
ब्रह्मादिक तेरी महिमाको पाय सकै नहिं पार ॥
तूही जब जब पाप होत नित तब तब धरि अवतार।
दुष्टन करि उच्छिन्न जगतते हरत भूमिको भार ॥

एक समय यहि भारत-रावण कीन्हो अत्याचार।
ताहो क्षन तू रामरूप धरि कीन्हों तेहि संहार॥
यहि विधि कृष्ण नृसिंह आदि धरि रूप अनेकन बार।
दुष्टन रहित भूमि कीन्हो प्रभु तव गति अपरम्पार॥
भक्तन टेर सुनत तूं धावत जगके काज बिसार।
आपु कष्ट सहि तुरत देत प्रभु तिनके दुःख निवार॥
होत आज प्रभु! तबते दूनो भारत पाप अपार।
कलियुग अरु अधर्म गहि नास्यो करि अपनो अधिकार॥
पै न सुनत हमरी कछु हे प्रभु लखि जग हाहाकार।
भयो आज तोसों मेरे क्यों अस निष्ठुर व्यवहार॥
रे मन तू नहिं सत्य हृदयसे प्रभु ढिग करत पुकार।
तासे 'माधव' दोष तोर नहि है सब दोष हमार॥

भीम पलासी

यही क्या हिन्दू पन को शान।
अवसर आया जब मरने का भगे छोड़ मैदान॥
पेट हेत अभिमान बेच कर फिरते हो अज्ञान।

गृह के ही हो शूर, शत्रु के सन्मुख श्वान समान ॥
कपट जाल पाखंड स्वार्थ को धर्म सनातन मान।
डुबा दिया इस कायरता ने हिन्दूपन अभिमान ॥
हिन्दू थे प्रताप हिन्दू पति हिन्दु जाति के प्रान।
सहे हजारों कष्ट किन्तु रक्खा स्वधर्मका मान ॥
हिन्दू थे गुरु नानक गोविन्द राय हकीकत शान।
नलवा हरीसिंह रणजित थे हिन्दू कुल अभिमान ॥
वीर शिवाजी सा जन्मेगी क्या कोई सन्तान।
अन्तिम किरण रहे सो भी हा गये तिलक श्रीमान् ॥
अबके हिन्दू घुसते फिरते लहँगों के दर्म्यान।
माधव इन नकली हिन्दूका क्योंकर हो कल्यान ॥

हिन्दू धर्माभिमान

जगत् में सब धर्मों का बीज सनातन धर्म हमारा है।
अन्य सभी धर्मों में बहती इसी की धारा है ॥
हिन्द देश औ हिन्द जाति का यही सहारा है।
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र सबका यह प्यारा है ॥

गऊ हमारी माता है यह पिता हमारा है।
चारों वेद में ब्रह्मा ने महिमा विस्तारा है॥
जब जब इस पर विपत पड़ी प्रभु ने अवतारा है।
दुष्टों का बध करके हिन्दू धर्म उबारा है॥
राम कृष्ण की लीला को इसमें उजियारा है।
सहज मुक्ति पद यही धर्म एक देने हारा है॥
ऋषियों ने इसको हां सनातन धर्म पुकारा है।
बौद्ध जैन सिख आर्य सभी का यह एक तारा है॥
तुलसी सूर रैदास ने इसपर तन मन वारा है।
अन्त कबीर बना हिन्दू तब स्वर्ग सिधारा है॥
इसकी रक्षा में वीरों ने सिर दे डारा है।
माधव हिन्दू वही है जिसको धर्म पियारा है॥

कजली की धुन में

हिन्दुओ एक बनो बल गहो नहीं फिर खाकर देखो जान।
गैरों के उपहास बने हो, कुटिल जनों के ग्रास बने हो,
सदियों से गत हास्य बने हो लज्जा नहीं [illegible] ॥१॥

यह क्लीवों का धाम नहीं है, कापुरुषोंका काम नहीं है।
यह वह जाति नहीं जिसमें होती कायर सन्तान ॥
धिक द्विज धर्मिष्ठता तुमारी, हरण हो रही सन्मुख नारी।
लज्जा नहीं लुके हो बिल में गीदड़ श्वान समान ॥
गुरुहो गुरुगोविन्दसा तीखा, क्षत्रिय सिवा प्रताप सरीखा।
भीमाशा सा वैश्य हकीकत सा, स्वधर्म बलिदान ॥
नहींइससमयप्राप्त अवस्था, सुनशास्त्र या वर्णाव्यवस्था।
हमें चाहिये जो बलि हो, रक्खे आर्य ध्वजाका मान ॥

जोगिया

साधो भाई क्या मूरखता छाई।
हिन्दू धरम सब धरमन ते ऊंचो धरम कहाई।
तेहि का छाँड़ि बनत तुम काहे मुसलमान ईसाई ॥१॥
आपन धर्म छाड़ि जो प्रानी बहकत भरम गंवाई।
वेद बतावत सोइ पापी नर परत नरक महं जाई ॥२॥
धाय २ तुम कबर पीर पूजत निलज्ज हवुआई।
निज अमृत भंडार छाँड़ि टूटत पर जूठन जाई ॥३॥

बडे भाग हिन्दू तन पाये पूरब करी कमाई।
सब तजि भजो रामको 'माधव' भव बन्धन कटिजाई॥

पद

जागो जागो हिन्दू भाई, सब आलस नींद गवांई।
जागो सनातन धर्मी हियमे छाँडि कपट कदराई।
आर्य समाजी जगो बनो निज हिन्दू जाति सहाई॥
जैन बन्धुओ तुम भी जागो जड़ता फूट नसाई।
गुरु सिख वीरो उठो बहादुर हिन्दू लेहु बचाई॥
मूर्ति टूटते लखि कायर बन बैठोगे जो भाई।
कहा कहेंगे गुरु गोविन्द, जिन, स्वामी, राम, गोसाई॥
ब्राह्मण जगो क्षत्रियो जागो सुमिरि बड़न प्रभुताई।
वैश्य बालको जगो नहीं तो होगी नहीं भलाई॥
शूद्र नाम धारी हिन्दुन के दीन सहायक भाई।
छूत अछूत सभी मिल जागो करो जाति सेवकाई॥
बालक-वृद्ध-युवा-नर-नारी जाति प्रेम सरसाई।
करो संगठन हिन्दु जाति का हिन्दू ध्वजा उड़ाई॥

लखि अमोघ तव शक्ति शत्रु दल वीर रूप एक ताई।
भाजहिं गे 'माधव' वै पामर कुटिल नीच समुदाई॥

देश

सूढ मन अब तो चेत सही।

हाय हाय करि जन्म गवाँयो,
कहो कहा जीवन फल पायो।
बनि कायर नित दांत दिखायो,
मान्यो नाहिं कही॥ १॥

लाज हया हिय में नहिं आन्यो,
भला बुरा कछु नहिं पहिचान्यो।
झूँठ सांच को ताना तान्यो,
खोयी बात रही॥ २॥

कौन आपनो कौन परायो,
अविवेकी तू सबै भुलायो।
बनि मूरख दोउ लोक नसायो,
देखो खोलि वही॥ ३॥

बहार-पीलू-मिश्रित

जागो हिन्दू वीर वली।

तेरी सम्पति लूट रहे हैं कायर क्रूर छली।
वैरी को मत भाई मानो, अपने भाई को पहचानो।
भले बुरे को अब तो जानो. खोलो हृदय कली ॥ १ ॥
तुमहो शेर भेड़ क्यों होते, साहस हीन बने क्यों रोते।
अपनी शक्ति भला क्यों खोते, फिरते गली गली ॥ २ ॥
बौद्ध सिक्ख जैनी हैं भाई, आर्य सनातन सबै मिलाई।
वैर फूट मतभेद मिटाई. ले लो कीर्ति भली ॥ ३ ॥
धर्म हमारा ही है सच्चा. मत मकान औरोंका कच्चा।
हम अनादि वह तो है बच्चा. छोड़ो दलादली ॥ ४ ॥

नाम-स्मरण

सुख दाता दुःख हर्ता राम।
रघुपति राघव राजाराम ॥
घट घट व्यापक राम जप रे।
सतचित आनन्द नाम जप रे ॥

मारवाड़ी भजन

कौसिया

पलमें पवन अघोरी चलती, पलमें पत्ते हलैं न चल।
पलमें पंछी उड़ते देखा, पलमें आप कटादे गल॥
पलमें कूप तलाव सुका दे, पलमें कर दे जल ही जल।
पल भरमें वह भीख मगा दे, जिनके लारे लस्कर दल॥
पल भरमें वह राजा कर दे, जिसके करमें स्यामी जल।
पल भरमें तो जवान वना दे, पलमें कर दे वृद्धावल॥
कहते हैं कर्ता सो डरिये, करता लावे घड़ी न पल।

(महात्मा गणेशजी)

भजन—तिलक कामोद

सहेली म्हारी समझ समझ पग ठाय।
विकट बाट बंटक है भारी कंटक ना लग जाय॥
मोह निशा अंधियारी कारी चो तरफो रही छाय।
माया झाड़ फाड़ रही तनको चलियो इसे वचाय॥

कुकर्म काँटा सूल जबर है भिडताई गड जाय।
होगे दुख अपार समझ फिर मारग चलो न जाय॥
काम-क्रोध-मद्-लोभ ठगा मिल जो कछु हो ले जाय।
आशा तृष्णा राग द्वेष में सिंह घेर ले आय॥
कालूराम-मिल्या गुरु पूरा दीनीं राह वताय।
विष्णू ईश अचल अविनाशी सवकी करे सहाय॥

सोरठा

मनुवाँ मोसर आयो रे।
चूके मत ना चाल काल सिर ऊपर छायो रे॥
कृपा हुई करता की जब तैंने नरतन पायो रे।
लावो ले सुकृत को करले चित को चायो रे॥
विषवत त्याग विषयको मनसे क्यों सकुचायो रे।
विषयन में रत रहत सो अपणो जनम गमायो रे॥
इन्द्रियन को रस भोग तो सभी जूणिमें पायो रे।
मानुस जन्म मुक्ति को साधन वेद बतायो रे॥
भर्म त्याग अब जाग नींदसे गुरां जगायो रे।

ले करवट अब मत सो पीछे दिन उग्यायो रे ॥
कृपा करी गुरुदेव ज्ञान दे तिमिर नसायो रे ।
विष्णू ईश अचल अविनाशी घट घट छायो रे ॥

भैरवी

भज मन ओ३म् नाम रस कंद ।
ब्रह्म सर्वव्यापक प्रभु स्वामी, रमणकरे हिय अंतरयामी,
अवगुण रहित सगुण गुण हामी सत्त चित्त आनन्द ।
विश्वनाथ! विष्णू! पितु माता प्रकृति चकोर तूं चंद,
शेष सुवर्ण शुक्र श्री स्रष्टा, पूर्ण प्राण दीनन दुखहरता ।
पूर्ण लोक नित कर्ता धर्ता, सर्व सगुण सम्पन्न ॥
निर्भय निर्गुण नित्य निरंजन, असुर निकंदन जनमन रंजन ।
अशरण शरण सकल दुख भंजन, जीव तुच्छ मतिमंद ।

कव्वाली

भजो नित नाम ओंकारा, रचा जिन सकल संसारा ।
अनारी मान मन मेरा, वहां नहिं है कोई तेरा ॥
जगत दिन दोयका डेरा, ज्यों चिड़ियां रैन बसेरा ।

यह है सब चालशो वारा ॥ १ ॥

असुर रावण से बलधारी, चले गये राम अवतारी,
कहां लछिमन से असुरारी, कहां हनुमत विजयकारी।
भरत कहां भ्रात प्रिय प्यारा ॥

कहां कौसिल्या महतारी, मात सीता सती नारी,
कहां विश्वामित्र तपधारी, गये सब काल की बारी।
लेओ जगदीश का सहारा ॥

नही धन संग जावेगा, यहां ही सब रह जावेगा।
वह जिस दिन काल आवेगा नहीं कछु करण पावेगा ॥
बांध ले धर्म का भारा।

भरोसा है नहीं पलका, मनसूवा क्या करे कलका।
तै करणा छोड दे छलका, तेरा ज्यूं पाप होय हलका ॥
करो दिल से परोपकारा।

जरा दिलमें दया धारो, काम अरु क्रोध ने मारो।
लोभ अरु मोहने टारो, होय ज्यूं ज्ञान उजियारो ॥
विष्णु है ईश आधारा।

मांड

समझ समझ मन मूरखो भाई।

चालो समझ कर चाल काल सिर पर गरणावेजी,

आयू क्षण क्षण जाय है भाई, जात न लावै वार

गई पल हाथ न आवेजी ॥

सुकृत करणा सो करो भाई धरो प्रभूका ध्यान

ज्ञान गुरुदेव जगावेजी ॥

ऐसा तनको जाणिये जैसे नदी किनारे रूख।

लाग्यां झटको डिगावे जी॥

जल तरंग विजली चमके है यह जोवन दिन च्यार।

वृथा क्यो अभिमान वढ़ावे जी ॥

दिलका परदा दूर कर तेरी है आत्मा शुद्ध।

कपट छल छिद्र विहावेजी ॥

गृह-नार-नाग-सम, मन लगा प्रभूके मायँ।

समझ मन देर न लावे जी ॥

तेरे भीतर है तेरा प्रभु स्वामी सुखका धाम।

खोज करणे से पावे जी ॥

कर्म वचन मन एक कर भाई दिव्य दृष्टि जब होय।

प्रभू दृष्टिगत आवेजी ॥

श्री गुरुदेव दयानिधे आचार्य कालूराम.

वाक्य उनका मन भावेजी ॥

भ्रम विहंग तुनके उड्यो श्रीगुरु वचन प्रताप।

विष्णु अविनाशी ध्यावेजी ॥

ॐ ॐ ॐ बजरङ्गी * दुष्ट दलन सज्जन सङ्गी।

भैरवी-तीनताल

कुण जाणे पराये मन की, मनकी लगन की भजनकी।

साधू रैन चानणी चावे सुरत लगी है भजनको ॥

चोरां रैन अंधेरी चावे सुरत लगी है परधन की।

हीरा की परख जौहरी जाने चोट सहे सिर धरकी ॥

घायल की गति घायल जाने चोट लगी है मरमकी।

आतमदास जात को मीनो राखोजी लाज चरनकी ॥

खमाच तीनताल

गुरु बिन कौन सचेत करावे।

काल व्याल सिर ऊपर गाजे ताको मरम बतावे।

करि उपदेश दृढ़ावत मन को अवघट घाट बतावे॥

राम देत निज धाम आपनो गुरु बिन भेद न पावे।

गुरुकी महिमा अधिक राम ते वेद विदित यो गावे॥

जब लग संत नदी में आवे भवसागर फिरि आवे।

लोक प्रकाश चरनगुरु के गहि गुरुही पार लगावे॥

छप्पय—(भर्तृहरिशतक)

सहे खलन के वैन इते पर तिनहिं रिझाये।

नैनन को जल रोक शून्य मन मुख मुस्काये॥

देत नहीं कछु वित्त ते ऊपर जोर दिखाए।

कर कर चाव करोर भोरही दौरत आए॥

सुनि आश श्वास तेरी प्रबल तू अति अद्भुत गति गहत।

इह भांति नचायो मोंहि अब और कहा करिबो चहत॥

उदै अस्त रवि होत आयु को छीण करत नित।

गृह धन्धे के माहिं समय बीतत अजान चित॥
आंखिन देखत जन्म जरा अरु विपति मरन नित।
तहूं डरत नहिं नेक शंकहू नाहि डरत चित॥
जग जीव मोह मदिरा पिए छाके फिरे प्रमाद में।
गिरत उठत फिर फिर गिरत विषय वासना स्वाद में॥
पृथिवी परम पुनीत पलँग ताको मन मान्यो।
तकिया अपनो हाथ गगन को तम्बू तान्यो॥
सोहत चन्द चिराग वीजना करत दशो दिशि।
वनिता अपनी वृत्ति संगही रहत दिवस निशि॥
अतुलित अपार सरपति सहित सोवत है सुखमें मगन।
मुनिराज महा नृप राज ज्यों पोढ़े देखे हम दृगन॥

सारङ्ग-ठुमरी

प्रभु निर्विकार, जग रचनहार, महिमा अपार।
नहिं मिलत पार काहे विचार आरन्, हुए हारे॥
सब दिख भरण भवताप हरण शीतलके शरण।
दुख दूर टारण परे तुमरे चरण सब दिन हारे॥

सुनो जगतनाथ हमहैं अनाथ अब पकर हाथ।
देओ अपना साथ धरैं चरण नाथ दयाकरके निहारो॥
तेरी ही आस धार पड़े आय द्वार 'भारतीय' पुकार।
करते बार बार कराओ उद्धार दुःख सागर तारो॥

ध्रुपद

आदि देव सकल नाथ, दीननके सदा साथ।
पकड़ो प्रभु हमरो हाथ, शोक को निवारो॥
सुर नर मुनि धरत ध्यान, वेद वचन करत गान।
तू ही सब गुण निधान, विश्व रचन हारो॥
ज्ञानी योगी मुनि संतान, अब होगई रहित ज्ञान।
कहीं नाहि मिलत मान दुख दोषसे उबारो॥
पवित्र महान भारत देश, जबसे पाल्यो भ्रातृ द्वेष.
हो गये दुर्बल विशेष, करावो प्रेम संचारो॥
सकल शक्ति के अगार, सगुण नित्य निराकार।
'भारतीय' करे पुकार त्रिविध ताप जारो॥

ओ३म् जप, ओ३म् जप, ओ३म् जप रे।